कबीर

प्रभाकर माचवे

H
811.21
K 112 M

भारतीय
साहित्य के

H
811.21
K112M

भारतीय साहित्य के निर्माता

कबीर

मूल अंग्रेजी एवं यह हिन्दी अनुवाद

प्रभाकर माचवे

साहित्य अकादेमी

Kabir : Hindi translation by Prabhakar Machwe of his own monograph in English, Sahitya Akademi, New Delhi (2002), Rs. 25.

Library IIAS, Shimla
H 811.21 K 112 M
00116125

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1984
पुनर्मुद्रण : 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2000, 2002

I-1
811.21
K 112 M

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग, 'स्वाति' मंदिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053
304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट, चेन्नई 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014
सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. अंबेडकर मार्ग, बंगलौर 560 001

ISBN 81-260-0018-X

मूल्य : पच्चीस रुपये

Indian Institute of Advanced Study
116125
18.11.04
SHIMLA

मुद्रक : पवन ऑफ़सेट प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

मेरे मित्र डॉ० प्रभाकर माचवे ने इस छोटी-सी किताब में पंद्रहवीं शती के महान् धार्मिक सन्त कबीर का बहुत अच्छा निरूपण किया है। उस समय हिन्दू और इस्लाम इन दो महान् धर्मों में संघर्ष था। दोनों ही धर्मों की अर्थहीन रूढ़ियों और धर्मकाड की आलोचना और उस पर प्रहार कर, कबीर ने दोनों धर्मों को निकट लाने का यत्न किया। उन्होंने, दोनों ही धर्मों का अन्तिम ध्येय एक ही और समान था, यह प्रचार किया। वे कट्टर रामभक्त थे। उनके अनुसार राम न तो विष्णु के अवतार थे और न ही कोई व्यक्ति सत्ता। वे निर्गुण निराकार थे। उनके 'राम' मुस्लिमों के 'रहीम' से किसी तरह भिन्न नहीं थे। उनके व्यावहारिक उपदेश कठोर नैतिक आचरणों के पालन पर जोर देते हैं और वे अन्धविश्वास विरोधी हैं। राम के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना में उनकी भाषा मधुर और गंभीर है; पर सामाजिक सुधार के क्षेत्र में वह बहुत कठोर और उत्तेजनापूर्ण है। नानक और दूसरे महान् सिख गुरुओं के मन में कबीर के लिए बड़ा आदर था। उन्होंने हिन्दुओं के जाति-भेद की तीव्र निन्दा की। मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, तीर्थ-यात्रा एवं पुण्यार्जन हेतु नदियों में स्नान और इसी तरह की विधियों से परलोक में आनंद पाने की धारणाओं के विरोध में कबीर ने कड़ी भाषा का प्रयोग किया है। इसी तरह, उन्होंने मुस्लिमों की मस्जिद से चिपके रहने की आदतों तथा सुन्नत, अजान, नमाज, रोजा, वगैरह की भी खासी मजम्मत की है।

कबीर की कविता को महान् बनाती हैं, उनके व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव की गहराई एवं विचारों की दिव्यता, जो वे अत्यन्त सरल भाषा में सहज ढंग से व्यक्त करते हैं। वे अर्थशून्य रूढ़ियों का निषेध करते हुए घोर प्रहारक लगते हैं, पर उनमें कटुता कहीं भी नहीं आती। वे तो जब परम तत्त्व से दिव्य प्रेम की मस्ती में होते हैं तब उनकी सर्वश्रेष्ठ कविता फूटती है—

"सुनो, मेरे भाई,
वही जानता है, जो प्रेम करता है।
प्रिय के प्रति अगर तुममें वह प्रेम की लगन नहीं है तो
व्यर्थ है यह शरीर को सजाना-सँवारना
और आँखों में अंजन लगाना"

कबीर कहते हैं—

बिरह भुजगम तन बसै, मंत्र न लागे कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होइ॥

परम प्रिय के प्रति ऐसी प्रगाढ़ प्रेम-भावना सूफ़ियों की 'इश्क़े-हक़ीकी' की तरह है।

कबीर ने नाथपंथी योगियों से रूढ़िवादी कर्मकांड और अन्धविश्वासों की घोर अवहेलना की परम्परा ग्रहण की पर उन्होंने योगियों को भी नहीं छोड़ा। उनका मत था कि ये योगी भी हठयौगिक आचारों पर अनावश्यक बल दे रहे हैं और भक्ति या दिव्य प्रेम की पूर्ण उपेक्षा कर रहे हैं। वे तो परमात्मा के साथ सहज मिलन, या 'सहज समाधि' पर ज़ोर देते हैं। अपने 'विनती के अंग' में लिखते हैं—

मैं अपनी आँखें नहीं मूँदता, अपने कान नहीं बन्द करता,
मैं अपनी काया को दण्डित नहीं करता
मैं अपनी खुली आँखों से देखता और मुस्कराता हूँ—
उसकी सुन्दरता सब ओर देखता हूँ।

इस दिव्य प्रेम की भावना की एक प्रथम आवश्यकता है, अपने अहं का संपूर्ण विलय। वे कहते हैं—

कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुई धरे, सो पैसे घर माहिं॥

ई० अण्डरहिल के कथनानुसार, "कबीर की दिव्य अनुभव की धारणा मूलतः कर्मप्रधान है। गति और वेग के प्रतीकों और संकेतों से वे बहुधा हम तक बात पहुँचाते हैं, जैसे 'नाचना' और 'प्रेम के बन्धन से अखिल विश्व का चिरंतन झूला झूलना' आदि के अद्भुत एवं आधुनिक बिम्ब—चित्र कबीर में मिलते हैं।

कबीर ने मध्ययुग के जीवन और साहित्य पर महान् प्रभाव डाला। हिन्दी में उनके व्यक्तित्व की तुलना भक्ति की दूसरी सगुण शाखा के महान् भक्त कवि तुलसीदास से ही की जा सकती है।

डॉ० माचवे द्वारा लिखित इस पुस्तक में संत कवि कबीर के धार्मिक सौहार्द्र, भ्रातृत्व-प्रचार, सामाजिक सुधार और गहन साहित्यिक योगदानों का बहुत अच्छा परिचय दिया गया है। इस पुस्तिका का निःसन्देह विश्व-धर्म और श्रेष्ठ साहित्य के प्रेमियों द्वारा स्वागत किया जाएगा।

पंजाब यूनिवर्सिटी,
चण्डीगढ़-14
20 अक्टूबर 1967

—हजारीप्रसाद द्विवेदी
(भारतीय साहित्य के टैगोर प्रोफेसर)

क्रम

1.	आमुख	5
2.	जीवनी	9
3.	दर्शन	21
4.	कविता	35
5.	भाषा	37
6.	छंद	41
	संकलित मूलपद, दोहे एवं साखियां	45
	कबीर की रचनाएँ	53

कबीर के जीवन के विषय में ऐतिहासिक तथ्यों के मामले में एकरूपता नहीं है। इतिहासकार, साहित्यिक विद्वान और कबीरपंथी अनुयायियों में भी मतैक्य नहीं है। कबीर की रचनाओं में अंतःसाक्ष्य बहुत ही कम मिलता है। फिर भी, एक सामान्य जीवन चरित्र की रूपरेखा बनने का प्रयत्न, जो भी स्रोत मिल सके हैं उनके सहारे, यहाँ तक कि जनश्रुतियों के आधार भी, यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

कबीर के एक पद की एक पंक्ति में जयदेव और नामदेव के नामों का गुरु के नाते अपरोक्ष रूप में उल्लेख है। जयदेव बारहवीं शताब्दी में हुए और नामदेव तेरहवीं में। 1956 में लिखी गई 'आईन-ए-अकबरी' में कबीर के नाम का उल्लेख इस तरह से है कि अब जो महान् पवित्र आत्माएँ नहीं रहीं, उनमें एक कबीर भी थे। दूसरी ओर मौलवी गुलाम सरवर अपने 'खजीनात-उल-आसफिया' में कबीर का जन्मवर्ष 1594 बताते हैं, जो ग़लत है। कबीर-पंथियों के प्रसिद्ध ग्रंथ 'कबीर चरित बोध' में उनका जन्म वर्ष 1398 ई० बताया गया है। यह वर्ष भी सही नहीं जान पड़ता है। जो बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है, वह इतनी ही है कि कबीर शायद ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी में विद्यमान थे। यह बात इस सामान्य जनश्रुति से मेल खाती है कि कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन थे, और शायद उनसे मिले भी थे।[1] ब्रिग्स के अनुसार, सिकन्दर लोदी का आगमन काशी में 1494 में हुआ था। भारत का पुरातत्त्व विभाग कहता है कि बिजली खाँ ने आमी नदी के किनारे 1495 में कबीर शाह का मकबरा बनवाया। डॉ० रामकुमार वर्मा का मत है कि बिजली खां ने कबीर का मकबरा नहीं, उनके स्मारक में एक इमारत बनवाई थी, और पुरातत्त्व विभाग के सर्वेक्षण में दी गयी तारीख अनुमानित है।

कबीर सामान्यतः रामानन्द के शिष्य माने जाते हैं, यद्यपि डॉ० भंडारकर और मोहनसिंह इस बात को नहीं मानते। ग्रियर्सन ने रामानन्द का जन्मवर्ष 1298 दिया है। फ़र्कुहर और केई वही तिथि 1400 और 1470 के बीच बताते हैं। डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, सारी उपलब्ध सामग्री की जाँच-परख कर इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कबीर का जन्म 1398 ई० में हुआ।' इस प्रकार के परस्पर विरोधी

१. कबीर की विचारधारा, पृ० 24, द्वितीय संस्करण, साहित्य निकेतन, कानपुर।

मत पढ़ने पर यह लगता है कि इस विषय में कोई भी बद्धमूल पूर्वाग्रह रखना कितना ग़लत है।

एक काज़ी के कुरान शरीफ़ खोलकर जिस शब्द को चुना वही 'कबीर' का नाम बन गया। अरबी में कबीर का अर्थ है महान्। कबीर ने अपने एक दोहे में कहा—

कबिरा तू ही कबीरु तू तोरे नाम कबीर।
रामरतन तब पाइये जद पहिले तज शरीर॥

—**कबीर ग्रंथावली** (श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ, 262)

कबीर के जन्म स्थान के विषय में भी तीन मत हैं:—मगहर, काशी और आजमगढ़ में बेलहरा गाँव। मगहर के पक्ष में तर्क यह है कि कबीर अपनी रचना में उसका उल्लेख करते हैं। वह लिखते हैं कि काशी देखने से पहले उन्होंने मगहर देखा और मरने से पहले वे पुनः मगहर लौटे। मगहर—काशी (आजकल की वाराणसी) के पास है और वहाँ कबीर का मक़बरा है, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

यह सच है कि कबीर ने अपना सारा जीवन मुख्यतः 'काशी के जुलाहे' की तरह बिताया, जैसे वे अपना वर्णन करते हैं। अन्य कई कबीरपंथी ग्रंथ भी इसी जन-विश्वास को मानते हैं। पर और कोई प्रमाण नहीं है कि उनका जन्म काशी में हुआ। '**बनारस गजट**' में यह उल्लेख कि कबीर बेलहरा गाँव में जन्मे थे, शायद इसी कारण जनश्रुति है कि वे लहरतारा में पैदा हुए। परन्तु इस बात के पक्ष में भी कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। आजमगढ़ ज़िले में कबीर, उनके पंथ या अनुयायियों का कोई स्मारक नहीं है।

कबीर के माँ-बाप और जाति के बारे में भी कई मत हैं। यह सब चमत्कार कि वे देवी प्रकाश से पैदा हुए या लहरतारा तालाब में एक पूरे खिले कमल पर पाये गये, छोड़ भी दें तो और दो संभाव्य कथाएँ भी हैं: वे एक ब्राह्मणी विधवा (पिता अज्ञात है) की संतान थे, जिसने उन्हें छोड़ दिया था और एक जुलाहा दंपति नीरू और नीमा ने उन्हें उठा लिया; या फिर वे इसी मुस्लिम दंपति की सन्तान थे। उनकी कविता में केवल इतना उल्लेख मिलता है कि जब वे छोटे थे, तभी उनके माता-पिता मर गए।

उनकी जाति के बारे में तीन तरह के तर्क है। अपनी रचनाओं में वे अपने को 'जोलाहा' और 'कोरी' कहते हैं। वाराणसी के अधिकतर जुलाहे मुस्लिम हैं। उत्तर-प्रदेश में 'कोरी' भी एक तरह के वयन-जीवी हैं, पर वे हलकी जाति के माने जाते हैं। डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार कबीर 'जुगी' या 'जोगी' (कबीर अपने पिता को गोसाई कहते हैं) जाति के थे। वे वयन-जीवी थे और उन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया था। नाथपंथी कहलाने वाले जाति बन्धन से परे वे

घुमन्तू वैरागी साधुओं के अनुयायी थे। भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के बाद उनमें से कइयों ने इस्लाम धर्म अपना लिया था; परन्तु उनके पुराने आचार-विचार वैसे ही चलते थे। इस स्थापना के समर्थन में डॉ० द्विवेदी ने निम्न तर्क दिये हैं : कबीर अपने आपको 'जोलाहा' कहते हैं पर कहीं मुस्लिम नहीं कहते। जहाँ कहीं वे अपने आपको 'ना हिन्दू ना मुस्लिम' कहते हैं, तो वे चातुर्वर्ण्य के नीचे की जाति का उल्लेख करते हैं। अपने एक पद में कबीर कहते हैं कि जोगी, हिन्दू और मुस्लिम एक-दूसरे से बिल्कुल अलग जाति-समूह हैं—

जोगी गोरख गोरख करई, हिन्दू राम-नाम उच्चरई।
मुसलमान कहे एक खुदाई,
कबिरा कौ स्वामी घट-घट रह्यो समाई॥

—**कबीर ग्रंथावली** (पद 330, पृष्ठ 200)

यह जनश्रुति कि कबीर के चोला त्यागने के बाद उनके हिन्दू और मुस्लिम अनुयायी और शिष्य अन्तिम संस्कार के लिए लड़ने लगे। हिन्दू चाहते थे कि दाह-संस्कार हो, मुस्लिम चाहते थे कि दफ़न-विधि हो (कहानी यों कही जाती है कि चादर खोली तो देखा उसके नीचे शव नहीं है, बल्कि फूलों का ढेर है, जो दोनों ने आपस में बाँट लिया)—और यह भी कि उनके दो गुरु थे—रामानन्द और शेख तक़ी। यह सब बातें सिद्ध करती हैं कि कबीर किसी बँधे-बँधाये धार्मिक विश्वासों की जकड़न में पैदा नहीं हुए, न बढ़े। वह दोनों धर्मों के कट्टरपन के आलोचक थे और एक विश्वात्मक परम तत्त्व के, सब सीमाओं से परे और ऊपर उठकर होने की जो बात करते हैं—(हद-अनहद दोनों गया, कबिरा देखा नूर)—तो उसके लिए कोई आधार था, जो वे 'निगुरे' बने।

उनकी शिक्षा और गुरु परम्परा के बारे में भी कई अनुमान हैं। यह तो सभी मानते हैं कि उन्होंने किसी शाला में विधिवत् शिक्षा नहीं पाई, न वे भाषा, दर्शन या अपने कपड़ा बुनने के काम में किसी से दीक्षित हुए। डॉ० मोहनसिंह का मत है कि कबीर 'गुरु' शब्द ईश्वर के लिए प्रयुक्त करते हैं, चूंकि उनका आध्यात्मिक या पारलौकिक विद्या में शिक्षित करने वाला कोई आचार्य या पीर नहीं था। वह इसलिए 'निगुरे' कहलाये। विशेषकर उनका दार्शनिक चिन्तन उनके अन्तर्ज्ञान का फल था, उनकी आध्यात्मिक साधना बहुत अंशों में आत्मोपलब्धियाँ थीं। परंतु मालकम वेस्टकॉट और डॉ० आर० एस० त्रिपाठी मानते हैं कि कबीर के उस्ताद शेख तकी थे। गुलाम सरवर के 'ख़जीनात-उल-आसफिया' में यही कहा गया है। कबीर के पदों और अन्य रचनाओं में कोई सीधा सूफी सम्बन्ध दिखाई नहीं देता, फिर भी यह स्पष्ट है कि उन पर तसव्वुफ़ का गहरा प्रभाव है। रामानन्द के साथ उनके सम्बन्धों के बारे में भी यही कहा जा सकता है। यद्यपि कबीर यही कहते हैं कि 'मेरे गुरु बनारस में हैं।' वह सीधे रामानन्द का नाम नहीं लेते, पर रामानन्द

और कबीर में बहुत घनिष्ठ संबंध रहे होंगे, जैसा कि उनकी बानी और उपदेशों की समानता से पता चलता है। 'दाबिस्तान ई-तवारीख़' के लेखक मोहसान फ़ानी और 'भक्त माल' के रचयिता नाभादास और उसके टीकाकार प्रियादास के अनुसार स्वामी रामानन्द कबीर के गुरु थे।

कबीर का पारिवारिक जीवन बहुत सुखमय नहीं रहा होगा। वे एक अविश्रांत साधक थे, पर उन्होंने लौकिक बंधनों को पूरी तरह छोड़ा नहीं था। उनकी बीवी और बच्चे थे। उनका भरण-पोषण करने के लिए वे श्रम भी करते थे। कई अनुश्रुतियों के अनुसार लोई उनकी पत्नी थी, जिसके माँ-बाप का कोई अता-पता नहीं मिलता। उनका विवाह कैसे और कहाँ हुआ यह भी रहस्य से आवेष्ठित है। डा० रामकुमार वर्मा ने कबीर के लेखन के अंतःसाक्ष्य से यह खोज की है कि कबीर की दो पत्नियाँ थीं : एक साधारण, दूसरी रूपवती। दूसरी पत्नी धनिया या रामजनिया थीं। 'रामजनिया' शब्द चूंकि नाचनेवाली के लिए प्रयुक्त होता है, डॉ० रामकुमार वर्मा सुझाते हैं कि शायद दूसरी एक नर्तिका थी। कबीरपन्थी ऐसी कोई 'खोज' बिल्कुल नहीं मानते; बल्कि इसका विरोध करते हैं।

परन्तु यह सब स्वीकार करते हैं कि कबीर का कमाल नाम का एक पुत्र और कमाली नाम की एक बेटी थी। यह भी कहा जाता है कि पुत्र कमाल और पत्नी लोई को कबीर की पारलौकिक साधना के विचार पसन्द नहीं थे। यह कबीर की रचनाओं से स्पष्ट है। वे अपनी पत्नी के लिए कई कटु शब्द लिखते हैं—"कुरूपी, कुजाति, कुलक्षनी" आदि। और पत्नी भी शिकायत करती है कि जब उसे खुद भूखे रहना पड़ता है, कबीर अपने यहाँ क्यों इतने साधु और अतिथि को खिलाने के लिए ले आते है ?

कबीर वंश-परम्परा से जुलाहे थे; पर उनका मन बुनकर के काम में या पेशे में ज़रा भी नहीं था। वे अपनी कविता में अपने व्यवसाय के कई शब्द रूपक-उत्प्रेक्षा की तरह प्रयुक्त करते हैं जैसे, चरखा, साँचा, ताना-बाना, चदरिया, बाँस की मछली। फिर भी वे इस बुने जानेवाले कार्य से अधिक अपनी दार्शनिक उधेड़-बुन और ब्रह्म-जाल में उलझे हुए थे। अपने ग्राहकों से अधिक उनका ध्यान ईश्वर में लीन रहता था—

तनना बुनना, सभु तज्यौ है कबीर।
हरि का नाम लिखि लियौ सरीर॥

—कबीर वाङ्मय (पृष्ठ 172)

कबीर ने बहुत से स्थानों पर प्रवास और यात्राएँ की होंगी। अपने एक भजन में वे कहते है—"मैं कई बार मक्का और हज पर गया हूँ।" मगर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उनकी यह उक्ति तथ्यों पर आधारित थी, या अपने विरोधियों को चुप करने के लिए उनकी यह काव्यमय प्रतीकात्मक सदूक्ति या

अतिशयोक्ति मात्र थी। भारत में वे अवश्य कई तीर्थों का भ्रमण कर चुके थे, यह उनकी बानी से पता लगता है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने कबीर की गुजरात-यात्रा का उल्लेख किया है। 'खुलासातुत्तवारीख' में उनकी रतनपुर यात्रा की बात है। 'आदि ग्रंथ' में नोमती के किनारे उनके सफ़र का वर्णन एक पद में आता है—जिसमें एक ऐसे धर्मनिष्ठ मुसलमान का उल्लेख है, जिसे वह 'पीताम्बर पीर' कहते हैं—

हज हमरी मोमती तीर, जहां बसैं पीतांबर पीर ॥

कबीर ग्रंथावली (श्यामसुंदर दास, पृ० 330)

'आईने अकबरी' में लिखा है कि कबीर जगन्नाथ पुरी गए थे। और 'मराठी लोगों के इतिहास' पर एक ग्रंथ में उनके दक्षिण महाराष्ट्र में पंढरपुर तक जाने का वर्णन है। कबीरपंथियों में लोकप्रिय 'कबीर मन्सूर' ग्रंथ में कबीर की बग़दाद, समरकंद और बुखारा की यात्राओं का ब्यौरा दिया है। चूंकि ये ऐतिहासिक स्थान प्रसिद्ध फ़ारसी सूफ़ियों से संबद्ध थे, तो यह उचित माना गया कि कबीर भी वहां गये होंगे।

कबीर को अपने जीवन-काल में कोई सम्मान नहीं मिला। तथाकथित निम्न या ओछी जाति में पैदा होने के कारण कबीर की उपेक्षा ही की गई और इस बात के लिए भी उन्हें उपहास का पात्र भी ठहराया गया कि वह उपदेशक बन गये हैं। उन्हें शारीरिक दण्ड भी दिया गया। कुछ लोगों ने उन्हें सांकल और बेड़ियों से जकड़ा, कुछ लोगों ने उनके दोनों हाथों को पीठ के पीछे बांधकर पीटा भी। ऐसा उनके अनेक पदों से पता चलता है। अनन्तदास के 'परचै' में इसका उल्लेख है और साथ ही, एक जनश्रुति यह भी है कि सिकन्दर लोदी ने उन पर अत्याचार किया। जी० एच० वेस्टकॉट ने अपने 'कबीर एण्ड द कबीर पंथ' ग्रंथ में हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के द्वारा उनके उत्पीड़न का उल्लेख इन शब्दों में किया है :—

"कबीर की सत्यवादिता तथा सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उनके सामाजिक अनादर के फलस्वरूप चारों ओर उनके दुश्मन खड़े हो गए। कबीरपंथी मान्यताओं के अनुसार, यह शेख तक़ी ही थे, जिन्होंने मुसलमानों की भावनाओं को स्वर दिया। यह प्रसिद्ध पीर बादशाह सिकंदर लोदी के पास पहुँचा और उसने कबीर पर यह आरोप लगाया कि वह अपने आपको दैवी गुणों से सम्पन्न बताता है। उसने ऐसे अपराध के लिए मौत की सजा दिये जाने का विधान बताया। बादशाह ने फ़रमान निकाला और कबीर को पकड़कर दरबार में लाने के लिए सिपाही भेजे। कबीर को पकड़कर ले जाने वाले लोग किसी तरह उन्हें मनाकर ले आये और उसमें काफ़ी शाम हो गई। कबीर बादशाह के सामने बिना बोले खड़े रहे। काज़ी ने चिल्लाकर कहा, "काफ़िर, तू बादशाह को सलाम क्यों नहीं करता?" कबीर ने शांत भाव से उत्तर दिया—"जो दूसरों का दुख-दर्द जान सकते हैं, वे

ही पीर होते हैं। बाक़ी तो सब काफ़िर हैं।'

बादशाह ने पूछा, "मैंने तुम्हें सवेरे आने का हुक्म दिया था, तुम शाम तक क्यों नहीं आए?" कबीर ने कहा, "मैंने एक नज़ारा देखा, जिसे देखने में मैं अटक गया।" बादशाह ने गुस्से से पूछा, "ऐसा कौन-सा नज़ारा हो सकता है, जो सुल्तान की हुक्मउदूली करने को मजबूर करे?" कबीर ने जवाब दिया—"मैंने सुई की नोंक से भी बारीक छेद से एक कारवां गुज़रता हुआ देखा।" बादशाह ने कहा, "तुम झूठे हो?" कबीर ने जवाब दिया—"ऐ सुल्तान! स्वर्ग और नरक के बीच में कितना बड़ा अंतर है! सूरज और चाँद के बीच के अंतरिक्ष में अनगिनत हाथी और ऊंट समाये हैं और यह सब एक आँख की पुतली की नोंक से देखे जा सकते हैं, जो कि सुई के छेद से भी छोटी है।" यह जवाब सुनकर बादशाह बहुत खुश हुए और उन्होंने कबीर को छोड़ दिया।

सनातनी ब्राह्मण कट्टरपंथियों ने कबीर को अधार्मिक कहा और एक बुरे चलन की औरत के साथ कबीर की 'भिताई' की अफ़वाहें फैलाईं। इस पर सुलतान ने कहा कि कबीर को प्राणदण्ड दे दो। कबीर को साँकलों से बाँधा गया और एक नाव पर बैठा दिया गया, जिसे पत्थरों से भरकर उन्हें ज़िंदा डुबो देने की सज़ा थी। नाव तो डूब गई पर कबीर एक चीते की खाल पर बैठे एक बच्चे के रूप में नदी में से तैरते हुए ऊपर आ गये। कबीर को फिर पकड़ा गया और उन्हें ज़िन्दा जलाने की कोशिश की गई। इसमें भी नाकामयाबी मिली। अब उन पर यह आरोप लगाया गया कि वे जादूगर हैं और उन्हें पिशाच सिद्धि है। सो उन्हें मत्त हाथी के पैरों के नीचे कुचल डालने की सज़ा दी गई। अब हाथी और कबीर के बीच में एक सिंह प्रकट हुआ, जिसे देखते ही हाथी भाग गया। कबीर के बारे में ऐसी अनेक किंवदन्तियाँ चल पड़ीं और उनमें से कुछ उनके शिष्यों और अनुयायियों की लिखी पुस्तकों में भी स्थान पा गईं।

कबीर के मृत्युवर्ष के बारे में चार अलग-अलग मत हैं:—कुछ उसे 1447 बताते हैं; कुछ 1511; कुछ 1517। अनन्तदास का मत है कि कबीर 120 वर्ष की लंबी आयु तक जीवित रहे। धर्मदास ने कबीर के पदों और साखियों का संग्रह उनके जीवनकाल में ही शुरू कर दिया था। उनका पहला पूरा संग्रह 1463 का है। बाबू डॉ० श्यामसुंदर दास मानते हैं कि कबीर का निधन 1517 में हुआ। सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर अपने 'इंडियन एम्पायर' ग्रंथ (1892) में कबीर का जीवनकाल 1380 से 1420 बताते है। डा० हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार यह 1398 से 1518 है।

1. कबिरा सोई पीर है जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बेपीर॥

यह एक लोकोत्तर जीवन की निरी रूपरेखा है, जिसके अनुसार जनश्रुतियों का अंबार जुट गया। यह रूपरेखा निस्संदेह अस्पष्ट और अपूर्ण है। विशेष रूप से जब हम यह विचार करते हैं कि कबीर की कविता और दर्शन ने कई सदियों तक केवल हिंदी-साहित्य पर ही नहीं, उत्तर भारत के साधारण जन-जीवन या आम आदमी की जिंदगी पर अपना गहरा असर डाला है। आरंभिक हिंदी साहित्य के सबसे बड़े पद रचयिता और रहस्यवादी कवि कबीर ही थे, इसमें कोई संदेह नहीं। बिशप वैस्टकाट की 1907 में छपी कबीर पर अंग्रेजी पुस्तक के पहले संस्करण में प्रकाशकीय टिप्पणी थी—"कबीर पंद्रहवीं शती के भारतीय 'लूथर' (धर्मसुधारक) थे, जिन्होंने हिंदी में आध्यात्मिक साहित्य और पवित्र बानी की रचना की। उन्होंने और उनके अनुयायियों ने इस्लाम के कट्टर एकेश्वरवाद और मूर्ति-पूजा के खण्डन के साथ हिंदुत्व में जो भी सर्वोत्तम और परंपरित स्रोत था, उसका समन्वय किया। हिंदुत्व और इस्लाम के सबसे अच्छे तत्त्वों को मिलाकर—जैसे राजा राममोहन राय ने आगे किया, कबीर ने एक मुश्तरका फलसफ़ा—एक समन्वित धर्मपंथ बनाने की कोशिश की। उपनिषदों के अद्वैतवाद पर उन्होंने अपने उपदेशों की नींव रखी। वे बड़े गायक थे, अवधूत थे, अद्वैतवादी थे।"

कबीर की कई 'शबीहें' या व्यक्ति-चित्र मिलते हैं, पर उनमें से कोई भी समकालीन नहीं है। यह एक विचित्र बात है कि भारत में किसी भी महाकवि या श्रेष्ठ साहित्यकार के, चाहे प्राचीन हों या मध्ययुगीन, कोई भी प्रामाणिक चित्र या शिल्प, ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में, चाहे वे कालिदास हों, ज्ञानेश्वर हों, तिरुवल्लुवर हों, नामदेव हों, चैतन्य हों या जयदेव हों—किसी के कोई आधिकारिक चित्र नहीं मिलते हैं। इसलिए कबीर के जितने भी चित्र प्राप्त हैं, उनमें सबसे पुराना चित्र ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है, जिसकी एक अनुकृति कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में उपलब्ध है। इस चित्र में संत कवि अपने करघे पर खुले बदन बैठे हैं, गले में मनकों की माला है, ऐसी माला जो अब भी कई भक्त पहनते हैं। उनके दोनों ओर दो शिष्य हैं। एक के गले में हार है, दूसरा मुस्लिम जान पड़ता है, जिसके हाथ में एक बाद्य है। इस चित्र में कबीर के कोई दाढ़ी नहीं है। गुरु अर्जुनदेव गुरुद्वारे में एक प्राचीन चित्र है, जिसमें कबीर करघे पर बैठे हैं और उनकी दाढ़ी भी है। कबीर चौरा, बनारस में लगे और 'रामानंद ते रामतीर्थ' तथा 'कबीर बचनावली' ग्रंथों में छपे चित्रों में उन्हें सूफ़ी संत दिखाया गया है। उनके हाथों में एक तस्बीह या जपमाला है, और उनके सिर पर फ़कीरों जैसी एक तिकोनी टोपी है। उनके कानों में छेद हैं और उनमें नाथपंथी जोगियों की तरह गोल कुंडल लटके हैं। चित्रशाला प्रेस, पुणे से प्रकाशित चित्र बहुत बाद का है और उसमें वे हिंदू साधु की तरह दिखाये गये हैं। कबीर सचमुच में कैसे थे, उनका रूप और बाना क्या था, क्या पहनते थे, इसका अनुमान इतने सारे चित्रों और 'शबीहों' से नहीं

लगाया जा सकता। शायद यही उचित था कि निर्गुण-निराकार परमेश्वर के मानने वाले कबीर स्वयं निराकार रह गये—"बिना रूप के केवल एक नाम" बचे रहे।

यहाँ संक्षेप में, उन स्रोतों का भी उल्लेख कर देना ठीक होगा, जिनसे कबीर की जीवन संबंधी सामग्री उपलब्ध हो सकती है। नाभादास (सं० 1642) के 'भक्तकाल' में सबसे पहला उल्लेख मिलता है। ऐसा माना जाता है कि वह 1550 ई० के आसपास लिखी गई। **'भक्त-माल'** में कई संतों के जीवन और चमत्कारों की कथाएँ हैं। उसमें जो दो पद मिलते हैं, उनसे केवल इतना ही पता चलता है कि वे रामानंद के शिष्य थे। प्रियादास की टीका में इसी बात की पुष्टि है और जोड़ा गया है कि कबीर एक विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे और उन्हें नीरू-नीमा ने पाला-पोसा। इसी ग्रंथ से पता लगता है कि कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन थे। रैदास, गरीबदास, धर्मदास, पीपा और तुकाराम के पदों में भी कबीर का उल्लेख आता है। सिक्खों के धर्मग्रंथ **'गुरु ग्रंथ साहिब'** में कबीर के रचे कई 'सलोक' और 'राग' हैं। गुरु नानक की बानी में भी कबीर का नामोल्लेख आता है। अनन्तदास की 'परचै' में, जो शायद 1600 में लिखी गई, इस बात की पुष्टि होती है कि कबीर काशी के जुलाहे थे और रामानंद के चेले थे। वे बघेर राजा वीरसिंह के समकालीन थे और उन्हें सिकंदर लोदी के अत्याचारों का शिकार होना पड़ा; वे एक संत थे और 120 वर्ष तक जिये।

कुछेक फ़ारसी और उर्दू की किताबों में भी कबीर का नाम और उनकी जिंदगी के बारे में कहानियों का जिक्र मिलता है। मौलवी गुलाम सरवर की **'खजीनात-उल-आसफ़िया'** का उल्लेख पहले किया जा चुका है। मोहसिन फ़ानी के **'दाबिस्तान-ई-मजाहिब'** और मौलवी नसीरूद्दीन के **'तजकिरुल फ़कारा'** में यह कहा गया है कि कबीर रामानंद के शागिर्द थे। **'आईन-ए-अकबरी'** में कबीर की समाधि या मक़बरे के बारे मे मतभेद है। कुछ लोग उसे अवध जिले में रतनपुर में बताते है, कुछ पुरी में—और ग्रंथकार ने अपनी राय पुरी के हक़ में दी है।

वेस्टकॉट ने अपने ग्रंथ **'कबीर एण्ड द कबीर पंथ'** में 'कबीर' नाम के ग्यारह उल्लेख दिये हैं जिन्हें विभिन्न तिथियों में कई तरह के साधु-संतों ने अपने नाम के साथ या उपाधि की तरह जोड़ा था : नागौर के **कबीर चिश्ती** जो गुजरात में 1554 में मरे; **शेख कबीर जुलाहा**, जिसे मुसलमान **'पीर कबीर'** कहते हैं और हिंदू **'भगत कबीर'** 1594 में मरे; **ख्वाजा औलिया कबीर'** जो बोखारा भी गये, 1594 में मरे; **सैयद कबीर -उद्-दीन हसन** बल्ख में 1490 में मरे; **शेख कबीर** बजौरा के रहने वाले थे और अफ़ीमची थे। **शेख अब्दुल कबीर** या **बालापीर** 1539 में मरे; मुसलमान के **शेख कबीर** जो बल्ख गए फिर हिंदुस्तान लौटे और **कबीर** के साथ घूमे, वे फतहपुर में 1585 में मरे; **अमीर कबीर मीर सैयद असी हमदानी**, जो 1379में कश्मीर गए और पाँच साल बाद वहीं मरे; सैयद जलालुद्दीन

के पिता, **सैयद अहमद कबीर सैयद जलालुद्दीन**, जो 1421 में मरे और जिनके पोते कबीर-उल-दीन इस्माईल थे; **दीवान शाह कबीर**, जिनकी याद में हुमायुं के राज्यकाल में जौनपुर में एक मस्जिद बनाई गई ।

पहले पाँच '**ख़ज़ीनात-उल-आसफ़िया**' में उल्लेखित हैं, छठे '**सैर-उल-अक़ताब**' में सातवें '**मुंकुलुल-उल-तवारीख़**', में; आठवें '**अख़बार-उल-इख़यार**' में और बाक़ी '**फ़रिश्ता**' में ।

कबीर के बाह्य रूप और उनके आविर्भाव के विषय में ही इतिहासकारों और साहित्य-समालोचकों में इतना मतभेद नहीं; उनकी शतियों और मतविश्वासों के बारे में भी, कई परस्पर विरोधी मत-मतान्तर हैं। फिर भी, नीचे जो लिखा जा रहा है, वह सामान्यतः अधिक स्वीकृत मत कहा जा सकता है।

कबीर पर उपनिषद् के अद्वैतवाद और इस्लाम के एकेश्वरवाद का प्रभाव था। पर उनमें कुछ विशिष्टता भी थी। कबीर का ईश्वर था :

जाके मुंह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप।
पुहुप वास ते पातला ऐसा तत्त अनूप॥

—**कबीर ग्रंथावली** (सं० माता प्र० गुप्त, पृष्ठ 101)

साथ ही कबीर पर वैष्णव भक्ति का गहरा प्रभाव है। कई कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें परमात्मा और जीवात्मा के संबंध सूफ़ी रंग से रँगे हैं, कई पदों में तांत्रिक सिद्ध, नाथपंथियों की शब्दावली कबीर मुक्त रूप से अपनाते हैं और कई पदों में वे सहजिया हैं। साथ ही, अपने आपको निपट 'अज्ञानी' 'गँवार' बताते हैं. जो कई तरह के प्रभाव अपनाते-समोते चले जाते हैं। कुछ पदों में कबीर एक सरलचित्त ग्रामीण की तरह भक्ति रंग में डूबे लगते हैं। उनके गीत लोकगीतों की तरह गाये जाते हैं। जैसे—

कैसे दिन कटिहैं जतन बताये जइयो।
एहि पार गंगा ओहि पार जमुना॥
बिचवाँ मड़इया हमको छवाये जइयो॥
अँचरा फारिके कागज बनाइल।
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो॥
कहत कबीर सुनो भई साधो।
बहियाँ पकरिकें रहिया बताये जइयो॥

—**कबीर** (हजारी प्र० द्विवेदी, पृष्ठ 334)

कबीर ने रामानंद के सगुण राम को निर्गुण, वर्णनातीत, अपरिभाषेय बना दिया जैसाकि गीता में कहा गया है —'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सः।' और एक पद '**शब्द को खोजि लें**' में कबीर ईश्वर को 'शब्द' मानते हैं।

कबीर के अध्यात्म का कोई 'वाद' नहीं। वे हिंदू-मुसलमान दोनों की तंगदिली

और कट्टरपन की तीव्र निंदा करते हैं। वे एक निर्भीक समाज-सुधारक हैं।

लोगा ऐसे बावरे, पाहन पूजन जांय।
घर की चकिया काहे न पूजै जेहि का पीसा खांय॥

कबीर के विचारों के भीतर एक विरक्ति का तीव्र स्वर है, उसी में यह भाव भी निहित है कि यह संसार आँसुओं का दरिया है, दुख का सागर है। वह बराबर इस बात की याद दिलाते हैं कि अंततः सारी चीजें मृत्यु की ओर ले जाती हैं। इसी कारण से कुछ समीक्षकों ने बौद्ध धर्म और कबीर-पंथ में साम्य-स्थल खोजे हैं। 'शून्य' जैसे बौद्ध दार्शनिक शब्द कबीर में भी कई बार आते हैं। उनकी कुछ पंक्तियाँ नागार्जुन की 'शून्य कारिका' के अनुवाद जैसे लगती हैं—

भारी कहूँ तो बहु डरौं, हलका कहूँ तो झूठा।
मैं का जानो राम कूँ, नैनूँ कबहूँ न दीठा॥
—साखी, जीर्णा को अंग, **कबीर ग्रं०** (श्यामसुंदर दास, पृ० 17)

वे बराबर कहे और अनकहे, स्वर और मौन के बीच की मध्य-स्थिति का उल्लेख करते हैं। उच्च कुलीनों के ढोंग की आलोचना करते समय वे बौद्धों का उत्साह और वज्रयानियों की तीव्रता अपनाते हुए लगते हैं।

उनके कुछ पदों में निरंजन पंथ का प्रभाव है। वे गोरखनाथ और नाथ-पंथियों की रहस्यवादी शब्दावली और मुहावरे प्रयोग में लाते हैं। शरीर में 'अष्टकमल का उल्लेख, साँस का प्राणायाम से कुंभक-रेचक और सारी साधना पद्धति योग-दर्शन के ढंग पर आधारित है।

यह विवाद का प्रश्न है कि कबीर सूफ़ी थे या नहीं? इसका विचार हम उनके 'दर्शन' के अध्याय में आगे करेंगे।

एक और कठिनाई है। उनकी रचनाओं में कौन-सी सचमुच में उनकी अपनी है, इसका भी विचार करना पड़ता है। कई उत्साही चेलों ने उनके नाम पर कई चीजें छाप दी हैं, और अभी तक उनके पदों का कोई ऐसा एकमात्र प्रामाणिक पाठ-भेदयुक्त संस्करण नहीं छपा है, जिसे अंतिम माना जा सके। इसलिए चुनाव करने में काफ़ी कठिनाई होती है। पुस्तक के अंत में दी हुई ग्रंथसूची इसी बात को ध्यान में रखकर सावधानी से पढ़ी जाये। हिंदी, उर्दू, पंजाबी (गुरुमुखी लिपि) और अंग्रेजी अनुवाद के रूप में जो कबीर की रचनाएँ प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं, वे सब ऐसी मौखिक सामग्री पर आधारित हैं, जिनकी कोई मूल पांडुलिपि अब प्राप्य नहीं। सो एक ही रचना या पद के कई रूप मिलते हैं। फिर मुद्रक ने भी उसमें अपने प्रमाद जोड़ दिये हैं। ग़लत छपे शब्दों के भी धार्मिक उत्साह से अर्थ खोजे गये हैं। इन सब पुस्तकों और टीकाओं को पढ़ना जंगल में से राह निकालने जैसा मुश्किल काम है। हमने इस ग्रंथ के लिए श्यामसुंदर दास, 'हरिऔध', रामकुमार वर्मा और हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित कबीर-पदावलियों को प्रामाणिक आधार माना है।

आगे के पृष्ठों में कबीर की कविता का, और हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में कबीर का स्थान, दोनों का मूल्यांकन करने का विनम्र प्रयत्न है। दूसरे अध्याय में दार्शनिक रहस्यवाद को कबीर का योगदान, चर्चित है। उनकी रचनाओं में यह निश्चित करना कठिन है कि कविता कहाँ समाप्त होती है और रहस्यवाद कहाँ शुरू होता है। वस्तुतः कविता और दर्शन के ताने-बाने उनके हाथों एक कुशल बुनकर की तरह एक-दूसरे से घुले-मिले हैं। कबीर ने स्वयं तो कुछ अपने हाथों लिखा नहीं। वे तो सिर्फ़ गाते और कहते जाते थे—अपनें अंतरमन की आँखों में देखो। उनकी बानी आनेवाली पीढ़ियों के लिए तथा घर-घर की हर जुबान पर चढ़ी, अनुभव की बात बन गई। यदि कविता कहीं मंत्र की तरह जादू बनकर सबके सिर पर चढ़ती हो, तो वह यहाँ है। उन्होंने अपने आत्मानुभव को छोटे-छोटे, सूक्तिमय दोहों में उड़ेल दिया। हर दोहा जीवन भर की अनुभूति की जैसे निचोड़ी हुई बूंद है।

वैदिक द्रष्टा ऋषियों ने कहा है—"एकं सद्, विप्रा बहुधा वदन्ति।" श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है, "जैसे तिल के दानों में तेल, दूध में मक्खन, सरिता के पात्र में पानी एवं ईंधन की लकड़ी में आग बसती है, वैसे ही आत्मा के भीतर 'स्व' बसता है। उसे जानो-पहचानो, सत्य और मनोयोग के साथ।" सूफ़ी कवि जलालुद्दीन रूमी (मृ० 1273) ने अपनी 'मसनवी' में 'एक सच्चे प्रकाश' के बारे में लिखा है :

दीये अलग अलग हैं, पर प्रकाश एक ही है
वह कहीं परे से आता है।
अगर तू दीपक की ओर देखता रहे तो तू खो जाएगा
क्योंकि उसी में से संख्या और अनेकता का आभास उभरता है।
प्रकाश की ओर दृष्टि लगा, और तू मुक्त हो जाएगा
इस ससीम शरीर में निहित दुई से
ओ तू अस्तित्व का सार—निसार है,
मुस्लिम, पारसी, यहूदी का यह सारा भेद सिर्फ़ दृष्टि-भेद है।

वेदांती या सूफ़ी की तरह कबीर का रहस्यवाद भी उसी कोटि का और उसी मात्रा में था। उनके लिए ससीम-असीम का कोई भेद नहीं था। रवींद्रनाथ ठाकुर ने 'कबीर की सौ कविताएँ' नाम से अंग्रेज़ी में अनुवाद प्रस्तुत किया था, उनमें से ये दो पद उद्धृत हैं, जिनका गद्य अनुवाद भी नीचे दिया जाता है —

ऐसा लो नहिं तैसा लो, केहि बिधि कहौं गंभीरा लो।
भीतर कहूँ तो जगमग लाजे, बाहर कहूँ तो झूठा लो॥
बाहर भीतर सकल निरन्तर, चित्त अचित्त दोउ मीठा लो।
दृष्टि न मुष्टि परगट अगोचर, बातन कहा न जाई लो॥

—कबीर (द्विवेदी, पृष्ठ 238)

—ओह, उस गुह्य शब्द को मैं कभी भी कैसे व्यक्त कर पाऊँगा? मैं यह कैसे कहूँ कि वह ऐसा नहीं है और वह वैसा ही है। अगर मैं कहता हूँ कि भीतर है, तो जग शरमाता है। अगर मैं कहूँ कि वह बाहर है, तो यह सब झूठ है। वह भीतर और बाहर की दुनिया को अखंड एक बनाता है। चेतन और अचेतन दोनों उसके पाँवड़े हैं। वह न तो प्रकट है न अप्रकट, वह न तो व्यक्त है न अव्यक्त। वह क्या है, यह बतानेवाले शब्द ही नहीं हैं।

Indian Institute of Advanced Study
116125
18.11.04
SHIMLA

और वे पुनः कहते हैं—

साधो, ब्रह्म अलख लखाया।
जब आप आप दरसाया॥
वृच्छ-मद्ध ज्यों वृच्छा दरसै, वृच्छा मद्धे छाया।
ज्यों नभ मद्धे सुन्न देखिये, सुन्न अनन्त आकारा॥
निःअच्छरते अच्छर तैसे, अच्छर छर बिस्तारा।
ज्यों रबि मद्धे किरन देखिये, किरन मद्ध परकासा।
परमातमें जीव ब्रह्म इमि, जीव मद्ध तिमि स्वांसा॥
स्वांसा मद्धे शब्द देखिये, अर्थ शब्द के माहीं।
ब्रह्म ते जीव जीव ते मन यों, न्यारा मिला सदा ही॥
आपहि वृच्छ बीज अंकूरा, आप फूल फल छाया।
आपहि सूर किरन परकासा, आप ब्रह्मा जिउ माया॥
अनन्ताकार सुन्न नभ आपै, स्वांस शब्द अरथाया।
निःअच्छर अच्छर छर आपै, मन जीव ब्रह्म समाया॥
आतम में परमातम दरसै, परमातम में झांई।
झांई में परछाईं दरसै, लखै कबीरा सांई॥

—कबीर (द्विवेदी, पृष्ठ 236)

—जब वह अपने आपको प्रकट करता है तो ब्रह्म स्वयं वह सब दिखाता है, जो कभी नहीं देखा जा सकता। जैसे पौधे में बीज है, वृक्ष में छाया है, आकाश में शून्य है, वैसे ही शून्य में अनन्त रूप हैं—अनंत के परे से अनंत आता है: और अनंत में से ही स्रोत प्रकट होता है। जीव में ब्रह्म है, ब्रह्म में जीव है। वे अलग-अलग हैं फिर भी सदा एकत्र हैं। वह खुद हद है और अनहद है; ससीम और असीम है। और हद बेहद दोनों से परे वह शुद्ध तत्त्व है। वह सर्वव्यापी मन ब्रह्म है, वही जीव में है, परमात्मा आत्मा में दिखाई देता है।

कबीर के दार्शनिक रहस्यवाद को समझने के लिए उनके तीन तत्त्व: परमात्मा या ब्रह्म, आत्मा या जीव और माया या संसार रूपी भ्रमजाल के बारे में विचार कर लेना उचित होगा।

कबीर ब्रह्म को मूल तत्त्व या सार कहते हैं। वह देश, काल, गुण समस्त परिणामों से परे है। उसे कोई परिवर्तन या भेद नहीं व्यापता। वह मुक्त है और अंतिम है। वह कार्य कारण भाषा से परे और परम है। वह न तो बायें है, न दायें है, न सामने है; न नीचे है, न ऊपर है; वह निरंकार है। उसकी ओर सिर्फ़ संकेत किया जा सकता है:

बायें न दाहिनें आगें न पीछू।
अरध न उरध रूप नहीं कीछ॥

माय न बाप आव नहीं जावा।
ना बहु जण्यौं न को वहि जावा॥
वो है तैसा वोही जानैं।
ओही आहि आहि नहीं आनैं॥

—कबीर ग्रंथावली (श्यामसुंदर दास, पृ० 242)

जैसा कि गांधीजी ने कहा था, "वह यूक्लिद का बिंदु है।"

कबीर का परमात्मा निर्गुण है। सत्त्व, रजस, तमस—तीन गुण माने जाते हैं; पर ब्रह्म इन तीनों गुणों में व्याप्त नहीं है। वह न तो जनमता है (अजा), न वह बढ़ता है, न वह मरता (अमर) है। वह केवल है (तत्सत)।

'कबीर ग्रंथावली' पृ० 13पर वह कहते हैं "जैसे बर्फ़ पानी से बनती है। पर फिर वही बर्फ़ पानी में पिघल जाती है। वैसे ही जो कुछ था, वह अपने रूप में आ गया, और अब कुछ कहा नहीं जा सकता। वह निराकार है, सो वह रंगहीन है। ऐंद्रिय संवेदनाओं से परे है।" उसी में से सारे भेद निकले और स्वयं ऐसा है कि भेदातीत है—'खालिक खलक खलक में खालिक सब घट रह्यौ समाई।'

—(कबीर ग्रंथावली, पृ० 104)

परमात्मा की परिभाषा या वर्णन तर्क द्वारा असंभव है, कबीर इतना कहकर रुक जानेवाले दार्शनिक नहीं हैं। कवि होने के कारण कबीर परमात्मा को मूर्त्त रूप देते हैं और परमात्मा और आत्मा के बीच प्रेमी-प्रेमिका या प्रेमिका-प्रेमी के संबंध ढूंढते हैं। कबीर का ईश्वर इस्लाम के एकेश्वरवाद और हिंदू के बहुदेवतावाद से परे का है। कबीर 'ज्ञानसागर' में कहते हैं —

तुर्कों की मस्जिद में, और हिंदुओं के मंदिर में,
खुदा और राम दोनों बसते हैं।
पर जहाँ न मस्जिद है न देवता
वहाँ कौन समाया हुआ है? (पृष्ठ 63)

यह परम तत्त्व आनंद है। उस परमानंद के आगे सारे भौतिक सुख व्यर्थ हैं। कबीर ईश्वर प्रेम के नशे को ऐसा बताते हैं, जो कभी उतरता नहीं और कम भी नहीं होता। वे कहते हैं कि ऐसा दैवी रस दुर्लभ है, अतिप्रिय है, पर हर कोई उसे पा या पी भी नहीं सकता। शंकर पार्वती ने वह रस पिया और अमर हो गये।

यह परम तत्त्व ज्ञान है, 'चित्' है। शुद्ध और केवल ज्ञान। वह सत्य है, जिसे पाना है। वह असीम, अखंड बरगद के बीज जैसा सूक्ष्म और आकाश जैसा विशाल है। इस रूप में परमात्मा प्रकाश है। कबीर का यह परमात्मा सूफ़ियों का 'नूर' है और कठोपनिषद् का 'न सूर्य, न चन्द्रमा, न तारे, न विद्युत्'—ऐसा आलोक है। कबीर इस ब्रह्म को पूर्ण-विकसित सहस्रदल कमल की उपमा देते हैं, जो हमारे शरीर नाम के सरोवर में स्थिर मुस्कुराता रहता है।

परम-तत्त्व शब्द है। योगसूत्रों में ईश्वर को 'प्रणव' या 'ओम' कहा गया है। ब्रह्मसूत्र भी शब्द को ब्रह्म कहते हैं। नाथपंथ में 'शब्द ही सब कुछ है—वह ताला है, वही कुंजी है; शब्द शब्द को जानता है और शब्द का अंत शब्द में होता है।" कबीर का एक पद अनहद नाद पर है, "अनहद नाम सदा बाजै।" दूसरे पद में वे कहते हैं—

साधो, शब्द-साधना कीजै।
जेहि शब्द ते प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै॥
शब्द गुरु शब्द सुन सिख भये, शब्द सो बिरला बूझै।
सोई शिष्य सोई गुरु महामत, जेहि अन्तर गति सूझै॥
शब्दै वेद कुरान कहत हैं, शब्दै सठ ठहरावैं।
शब्दै सुन मुनि-सन्त कहत हैं, शब्द भेद नहीं पावैं॥
शब्दै सुन सुन भेष धरत है, शब्दै कहैं अनुरागी।
षट-दर्शन सब शब्द कहत हैं, शब्दै कहैं बैरागी॥
शब्दै काया जग उतपानी, शब्दै केरि पसारा।
कहैं कबीर जहाँ शब्द होत है, भवन भेद है न्यारा॥

—कबीर (द्विवेदी, पृष्ठ 268)

नाथ पंथ और बौद्ध शून्यवादियों से प्राप्त कई शब्द कबीर ने प्रयुक्त किये हैं। वे परम तत्त्व को 'सुन्न या न।कुछ' कहते हैं। बौद्ध धर्म के 'शून्य' से कबीर का 'सुन्न' भिन्न है। वह शंकर के अनिर्वचनीय ब्रह्म के बहुत निकट है। कबीर ईश्वर की अनुभूति को गूंगे का गुड़ कहते हैं। वह असंप्रेष्य, अनभिव्यंजनीय, अवर्णनीय है। कबीर बार-बार जिस 'अनमनी' अवस्था की ओर संकेत करते हैं, वह रहस्यवादियों की दैवी उन्माद की अवस्था है। वही समाधि है। कई बार कबीर नकारात्मक शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जैसा वेदांती करते हैं 'नेति, नेति'। कबीर भी अपने ब्रह्म को 'यह भी नहीं, और सबसे परे' पारिभाषित करते हैं—

गोब्यंदे तूँ निरंजन तूँ निरंजन तूँ निरंजन राया।
तेरे रूप नहीं रेख नहीं मुद्रा नहीं माया॥
समद नाहीं सिषर नाहीं धरती नाहीं गगनां।
रवि सीस दोउ एकै नाहीं, बहत नांहीं पवनां॥
नाद नांहीं ब्यंद नाहीं, काल नाहीं काया।
जब तैं जल ब्यंब न होते, तब तूँ ही राम राया॥
जप नाहीं तप नांहीं, जोग ध्यान नहीं पूजा।
सिव नाहीं सकती नांहीं देव नहीं दूजा॥
रूग न जुग न स्यामं अयरबन, बेद नहीं ब्याकरनां।
तेरी गति तूँहीं जानै, कबीरा तो सरनां॥

—कबीर ग्रंथावली (पृष्ठ 162)

परंतु यही निर्गुण ब्रह्म सहसा परिवार का सदस्य बन जाता है। माता-पिता जैसा, भर्तार जैसा (दुलहिनि गावहु मंगलाचार, हमारे राजा राम भरतार), अतिथि जैसा, स्वामी जैसा (हौं तो कूकर राम का)। और यही अत्यंत व्यक्तिगत परमात्मा कबीर की अन्य कविताओं में एकदम निर्वैयक्तिक, सर्वातीत, प्रतीकात्मक अरूप तत्त्व बन जाता है। कबीर में ऐसी कई परस्पर विरोधी बातें दिखाई देती हैं।

अंततः कबीर का परमात्मा नाम है। उसे और किसी भी नाम से पुकारो, क्या फ़र्क पड़ता है? जयदेव ने राम और गोविंद की स्तुति की, नामदेव ने विट्ठल की, और अनेक संतों ने और कई नामों का सहारा लिया। कबीर अपने एक पद में ऐसे सारे नाम गिनाकर, अंत में इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि—"तुम्हें कोई किसी भी नाम से याद करे, तुम तो वही रहते हो।"

कबीर की आत्मा के संबंध में भावना भी उतनी ही उलझी हुई और बाह्यतः परस्पर-विरोधों से भरी हुई है। वह जीव है, 'साँसा' है, 'आपुनपौ' है, अहम् है, न नर है, न नारी, न और कुछ ऐसी इंद्रियातीत चीज है, और वह आत्मा है जो 'पिण्ड में ब्रह्माण्ड' है। वह मन है, वह इंद्रियाँ है, वह सांख्य के तीन तरह के पुरुष की तरह है—व्यक्त, अव्यक्त और इन दोनों का जाननेवाला। कबीर के विचार में यह आत्म-ज्ञान ही सबसे बड़ी साधना है। हर मनुष्य-जीवन का परम उद्देश्य यही है। घड़े कई रूपों में बनते हैं। पर हैं, एक ही मिट्टी के। गौवों के रंग कोई भी हों, उनसे मिलनेवाला दूध एक ही जैसा सफ़ेद है। वह देहरी पर रखा हुआ दीप है, जो भीतर-बाहर एक-सा उजाला फैलाता है। वह 'अमर, अजा, अविनासी' है। ठीक वैसे ही जैसे गीता में आत्मा को 'अयम् हन्ति न हन्यते' कहा गया था।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में आत्मा को परम तत्त्व कहा गया है—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥5/10

—न वह पुरुष है, न स्त्री है, न वह नपुंसक है, वह तृतीय लिंग है। वह जिस शरीर में जाता है, उसी तरह का रूप ग्रहण कर लेता है। कबीर कहते हैं—

पंडित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी।
सहज समाना घट घट बोलै, बाको चरित अनूपा।
बाको नाम काह कहि लीजै, बाके बरन न रूपा॥
ते मैं काह करसि नर बौरे, क्या तेरा क्या मेरा।
राम खोदाय सक्ति सिव एकै, कहु धौं काहि निहोरा॥

— कबीर वाङ्मय पद संख्या 167, (पृ० 209)

आत्मा निराकार, निस्सीम एवं सारे परिवर्तनों से परे है। वह 'बूँद में समुद्र'

है, वह न अलग किया जा सकता है, न समुद्र से बिंदुता भिन्न है। आत्मा अद्वैत, निरंजन, सदा-जीवित, सूक्ष्म से सूक्ष्म, अणोरणीयान् है। वह देहरूपी पिंजरे से एक निश्चित समय पर मुक्त होती है। कबीर अपने बुनकर पेशे से उपमाएँ देते हैं—"यह शरीर तो चादर की तरह है, जो उपभोग में लाने पर झीनी या तार-तार हो जाती है। सो उससे आसक्ति क्यों ?"

आत्मा-परमात्मा स्वरूपतः एक ही हैं। कबीर आत्मा की पहचान के लिए कई तरह की उपमा-रूपकों का सहारा लेते हैं। आत्मा वृक्ष है– आत्मा सूरज है, किरण है, प्रकाश है, ज्योति है, जो सबको दिखाती है, खुद दिखाई नहीं देती। आत्मा पक्षी है, पिंजरा है और उससे परे आसमान है। वह दीया है, बाती है, तेल है और जो सारे अंधेरे को दूर करे, ऐसी रोशनी है। जैसे कमल को न पानी, न ओस, न कीचड़—कुछ नहीं छू पाता, वैसे ही आत्मा उसमें है और फिर भी उसमें नहीं है। आत्मा पवन है, आग है, पानी है, आत्मा शब्द और सब एक साथ है। तैत्तरीयोपनिषद् कहता है—"रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेव आकाश आनन्दो न स्यात्"—अर्थात् आनन्द ही आत्मा और परमात्मा है, आनंद ही आदि और अंत है। कबीर में वही अनुगूंज मिलती है—आनंद ही सब देवता और आत्माओं का आधार है। उनकी पंक्तियाँ हैं —

आकास गगन पाताल गगन, दसौ दिसा गगन रहाई ले।
आनंदमूल सदा परसोतम, घर बिनसै गगन न जाई ले॥

—कबीर पंचावली (श्यामसुंदर दास, पृष्ठ 187)

आत्मा की आधिभौतिक और पारलौकिक दो अवस्थाओं के बारे में, जिनकी वेदांती चर्चा करते हैं, कबीर कहते हैं—"अपने आपको अपने आपसे जानो।" कबीर जी की एक साखी का आशय है—सुरति में निरति खो गई और निरति बिना आधार रह गई। पर जो सुरति-निरति दोनों को जान गया, उसके लिए सारे द्वार सहज ही अनायास खुल गए—

सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार॥

—कबीर वाङ्मय, (संपा० शुकदेव सिंह, राजदेव सिंह, पृ० 69)

यहाँ सुरति बद्ध आत्मा के लिए और निरति मुक्त और अनासक्त आत्मा के लिए प्रयुक्त शब्द हैं। आत्मा को मिथ्या कैसे ढाँक लेती है, वह भ्रम में पड़कर कैसे दिशाहारा होती है, और कैसे वह बंधन तोड़ना चाहती है। अंततः आत्मा को सब आसक्तियों से मुक्त होकर अंतिम निस्संग अवस्था तक पहुँचने के लिए, आत्मा को अहम्-विरहित, द्वेषरहित, आत्म-ज्योति की साधना करनी होती है।

जगत् या माया के प्रति कबीर की दार्शनिक वृत्ति उतनी ही महत्त्व की है। उपनिषद् में माया को ब्रह्म की जीवनी-शक्ति कहा गया है। वह प्रकृति है और

अविद्या है। गीता माया को अज्ञान, तीन गुणों की जादूगरनी बताती है। शंकर उसे अध्यास मानते हैं, और आधुनिक भाषावैज्ञानिक दार्शनिक जिसे 'मानसिक संरचना' कहते हैं, उस जैसी चीज़ कहते हैं। कबीर अनेक उत्प्रेक्षाओं से इस तत्त्व की शक्ति वर्णित करते हैं। वे कहते हैं कि माया ऐसी लता है कि उसे काटो तो वह और बढ़ती है; उसे सींचो तो वह मुरझाकर गिर जाती है; यह नाना गुणोंवाली ऐसी लता है कि इसका वर्णन शब्दों से परे है—

जे काटौं तो डहडही, सींचो तो कुमिलाइ।
उस गुणवंती बेलि का, कुछ गुण कह्या न जाइ॥

—कबीर ग्रंथावली (श्यामसुंदर दास पृ० 86)

माया ऐसी नागिन है, जो अपने जैसे ही सौ बच्चे पैदा करती है। वह क्षणभंगुर है, पल-छिन बदलती जाती है। वह बड़ी मथनेवाली है। उसीसे दुख है। वह कोहरे की झीनी चादर जैसी है, वह कपास में छिपी आग की तरह अप्रकट और प्रकट दोनों है। रँगी-सजी वेश्या है, जो खुले बाज़ार में जीव को लुभाती और ठगती है। वही सारे भेद-भाव का कारण है और उसी से सारी रचना है। दूसरे शब्दों में,

जिसने यह चित्र बनाया वही सच्चा कठपुतली वाला है
पर उनको सौ धिक्कार है, जो चित्र को सिर्फ़ चित्र मानते हैं।

इन्हीं दार्शनिक मान्यताओं के साथ, कबीर की मुक्ति या अंतिम मोक्ष के विचार गहरे जुड़े हैं। प्रत्येक भारतीय मनीषी और संत की पहली चिंता इस दुख-सागर से तिरने, इस 'संसार' से छूटने की रही है। कबीर अमरता को ऐसा अंतिम मूल्य मानते हैं, जिसकी खोज हर मनुष्य के लिए ज़रूरी है। अनंत के साथ महामिलन को वह जन्म-विवाह-मृत्यु के चक्र से उबरना और जोत का जोत में समा जाना मानते हैं। योग दर्शन या बौद्ध दर्शन जैसी ही उनकी मुक्ति या निर्वाण की कल्पना है। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन ने निर्वाण को 'परमार्थ सत्य' माना है। कबीर उस अवस्था को 'निरभै पद' कहते हैं। एक बार साधक सबकी सहायता और सेवा में लग जाये और दृष्टि की वह 'समत्वं योगमुच्यते' वाली इयत्ता पा जाये तो फिर उसे 'डर काहे का?' अगर डर बचा रहता भी है तो भीतर के पाप का है—

अपनैं परचै लागी तारी, अपन पै आप समांना।
कहैं कबीर जे आप विचारै, मिटि गया आवनजाना॥

—कबीर ग्रंथावली (श्यामसुंदर दास, (पृ० 90)

—एक को जान लेने पर—'समत्व बोध या समत्व योग' से परिचय हो जाता है। एक में एक—अर्थात् आत्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है और 'दुई' या द्वयता का बोध नष्ट हो जाता है। इसलिए कबीर 'स्वयं को जान ले' पर बल देते हैं—ताकि सारा आना-जाना या 'आवागमन' मिट जाये।

कबीर के लेखे बंधन निरा व्यक्तिगत आभास है। एक बार वह टूट जाने पर

शुद्ध अद्वैत और अभेद बचता है। 'दुई' रहती ही नहीं।

'जल में कुंभ, कुंभ में जल है बाहिर भीतर पानी;
फूटा कुंभ, जल जलहि समाना, यह तत कथो गियानी।

दो घड़े पानी में तैर रहे हैं। उनमें प्रतिबिंब पड़ रहा है। दोनों घड़े फूटते हैं। प्रतिबिंब बिखर जाता है। फिर भी, विस्तृत जल में वही प्रतिबिंब दिखाई देता है—सारे बिंब एक हैं। इसी प्रकार, कबीर के लिए मुक्ति कोई वस्तु बाह्य नहीं, बाह्य कारणों से प्रेरित स्थिति नहीं। यह तो भीतर से जागनेवाली कामना है कि इस भ्रम और मिथ्या से हम दूर हों; और एक बार उस 'जीवनन्मुक्त' की अवस्था में पहुँचे कि दुनिया भर का अँधेरा और आत्मा की अंधता समाप्त होती है।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए कबीर एक सिलसिलेवार साधना-मार्ग बनाते हैं। उसमें यम, नियम, प्राणायाम, संयम आदि हैं, पर उनकी चर्चा यहाँ आवश्यक नहीं। इतना ही यहाँ चलते-चलते बताना काफ़ी होगा कि कट्टर कबीर-पंथियों में भी इन सब विधियों और प्रणालियों के बारे में सहमति नहीं है। शरीर पर अनुशासन प्राप्त करके, एक पूरी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से गुजर कर, आध्यात्मिक चेतना जगाने का वह मार्ग है, जिसे विविध योग-पंथों में विस्तार से बताया गया है। कबीर की वृत्ति मधुकर जैसी है—वह सर्वसंग्राहिका शैली से प्रत्येक योग-शैली का सर्वोत्तम अपनाते दीखते हैं, चाहे वह हठयोग हो या मंत्रयोग, लययोग, सहजयोग हो या राजयोग। वहाँ साधु जैसी दिनचर्या पर आध्यात्मिक अर्थपूर्णता का विधान है।

कबीर को सामाजिक और नैतिक सुधारक के नाते आज के क्रांतिकारी भी महत्त्व देते हैं। जाति-भेद के नाम पर मनुष्य-मनुष्य में विषमता का और सामाजिक असमानता की मूर्खता का जिस प्रकार से बुद्ध ने निषेध किया था, कबीर ने भी उसकी घोर निंदा की है। उन्होंने हिंदू और मुस्लिम दोनों की अंध श्रद्धा को, बाद के वैज्ञानिक विवेकवादी की तरह चुनौती दी, और उनके ढोंग और झूठ को सिद्ध करने का आह्वान किया। वे यथार्थवादी थे, उन्हें ऐसा गाते हुए कोई लज्जा नहीं थी—

भूखे भगति न कीजै। यह माला अपनी लीजै॥
हौ माँगो संतन रैना। मैं नाही किसी का देना॥
माधव कैसी बनै तुम संगे। आप न देउ तले बहुमंगे॥
दुइ सेर माँगो चूना। पाव घीउ संग लूना॥
अधसेर माँगो दाले। मोको दोनों बखत जिवाले॥
खाट माँगौ चौपाई। सिरहाना और तुलाई॥
ऊपर कौ माँगौ खीधा। तेरी भगति करै जनु बीधा॥
मैं नाही कीता लब्बो। इक नाउ तेरा मैं फब्बो॥
कहि कबीर मन मान्या। मन मान्या तो हरि जान्या॥

—राग सोरठ, **कबीर ग्रं०**(पृ० 314)

वे जमाख़ोरी और पैसे के गर्व और प्रदर्शन के विरोधी थे। वे सब तरह के विलास और नशे के विरोधी थे। वे सादगी और संतोष के प्रचारक थे और इसमें विश्वास करते थे कि हर एक को शरीर श्रम करना चाहिए और अपना-अपना काम करन चाहिए, किसी को दूसरे की सपत्ति नहीं चुरानी चाहिए। राज-लोभ और राजनैतिक अपराधी की उन्होंने निंदा की है। उन्होंने सवाल किया, "फौज जुटाना और क़िलों की घेरावंदी करना और अपनी शक्ति-प्रदर्शन करना, क्या यही बादशाह का काम है? जब बादशाह मर जाता है, तो इस खेल का क्या बचा रहता है?"

"ऐसे राजा के पास करोड़ों रुपये और हाथी हों, फिर भी ऐसे कंजूस की संपत्ति का क्या उपयोग?"

"राजा और प्रजा दोनों आख़िर एक से इन्सान हैं। दोनों एक ही मूल 'ओम्' से निकले हैं।"

कबीर सब प्रकार के संप्रदायवाद और संकीर्ण मन और दृष्टिकोणों के कटु आलोचक थे। "न ब्राह्मण ऊँची जाति का है न शूद्र। फिर क्यों एक दूसरे से द्वेष करते हैं? यह मूर्खता है।"

बाह्याचार अर्थहीन है। सारे बदन पर भस्म लेपन करना, दिन में तीन बार धर्म के नाम पर नहाना, उपवास रखना, तीर्थ-यात्रा पर जाना, मालाएँ फेरना, ज़ोर-ज़ोर से ईश्वर नामोच्चारण का प्रदर्शन करना, अपने शरीर को दंडित करने में आनंद लेना, ये सब कबीर के तीव्र व्यंग्य और घोर उपहास के विषय हैं —

अलह राम जीऊँ तेरे नांई।
बन्दे परि मिहर करौ मेरे सांई॥
क्या ले माटी मुंइ सूं मारै, क्या जल देह न्हवायें।
जोर करे मसकीन सतावै, गुंन ही रहैं छिपायें॥
क्या उजू जप मंजन कीयें, क्या मसीती सिर नायें।
रोजा करें निमाज गुजारें, क्या हज काबै जायें॥
ब्राह्मण ग्यारसि करै चौबीसों, काजी माह रमजांन।
ग्यारह मास जुदे क्यूं कीये, एकहि माँहि ममांन॥
जौ र ख़ुदाई मसीति बसत है, दुहूँ मैं किनहूँ न हेरा।
पूरिब दिसा हरि का बासा, पछिम अलह मुकांमां॥
दिल ही खोजि दिलै दिल भीतरि इहाँ राम रहिमाना॥

—कबीर ग्रंथावली (माता प्र० गुप्त, पृ० 301)

—"यह शरीर जो मिट्टी से बना है, उस पर मिट्टी क्यों चुपड़ते हो? इस चलते-फिरते रूप को क्यों कुरूप बनाते हो? क्या फ़ायदा है नामोच्चार और माला जपने का? मस्जिद में जाकर बंदगी का क्या फ़ायदा है? इस उपवास, फाके और सिजदे का अथवा हज का और काबा जाने का क्या अर्थ है? ब्राह्मण चौबीस एका-

दशी का उपवास रखता है और काजी मुहर्रम रखता है।

कबीर आगे कहते हैं—

'जो खोदाय मसजीद बसत है और मुलुक केहि केरा।
तीरथ-मूरत राम-निवासी बाहर करे को हेरा।
पूरब दिसा हरी को वासा, पच्छिम अलह मुकाना।
दिल में खोज दिलहि में खोजौ, इहै करीमा रामा।
जेते औरत-मरद उपसी सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगड़ा अलह-राम का सो गुरु-पीर हमारा॥"

कबीर बड़ी ही पैनी और समोचीन उत्प्रेक्षाएँ लिखते हैं—"अगर पवित्र डोरी पहनने से ही कोई द्विज हो जाता है तो रहट को क्यों ब्राह्मण नहीं कहते, उसके गले में तो सदा डोरी पड़ी रहती है।" मस्जिद की ऊँची मीनार पर खड़े होकर काजी इतनी जोर से बांग क्यों देता है? क्या खुदा बहरा है?"

काँकर पाथर जोरि के मस्जिद लियो बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरो भयो खुदाय॥

इसी प्रकार, अपने दूसरे दोहे में मांसाहार हेतु जीव-हत्या पर कबीरदास की टिप्पणी है—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल
जो बकरी को खात हैं, ताको कहा हवाल। (साखी)

"इन मूर्खों को तो देखो, जो मृतकों की पूजा करते हैं। श्मशान में जाकर मुर्दा जला आते हैं और आकर बड़े प्रेम और आसक्ति का प्रदर्शन करते हैं। जब जिन्दा होते हैं तो बड़े-बूढ़ों को डंडों से मारते हैं और मरने पर उनके मुंह में गंगाजल डालते हैं। जब जिंदा होते हैं तो बड़े-बूढ़ों को भूखा रखते हैं; जब मर जाते हैं तो उन्हें भात के पिंड खिलाते हैं। जब बड़े बूढ़े जिंदा रहते हैं तो उन्हें गाली-गलौज देते हैं; जब मर जाते हैं तो उनका श्राद्ध करके श्रद्धा दिखाते हैं। कबीर को आश्चर्य होता है कि कौवों को खिलाने से मृतक पितरों तक वह अन्न कैसे पहुँचता है? ऐसे आशय के कबीर-ग्रंथावली में सैंकड़ों पद हैं।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कबीर' में यह सिद्ध किया है कि कबीर की ब्राह्माचारों और केवल धार्मिक विधियों के प्रदर्शन की आलोचना हठयोगियों और कबीर के गुरु रामानंद से मिली परंपरा है। वे कहते हैं—

"जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिन्दुओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। परन्तु यह साधारण गृहस्थों का धर्म था। देश में और भी नाना भाँति की साधनाएँ प्रचलित थीं। कोई वेदपाठी था, तो कोई उदासी; कोई ऐसा न था, जो दीन बना फिरता था। कोई तो दान-पुण्य में ही व्यस्त था; कोई मदिरा के सेवन को ही चरम साधना मानता था, तो कोई तंत्र-मंत्र औषधादि की

करामात से ही सिद्ध बना फिरता था, कोई सिद्ध था, कोई तीर्थव्रती था और धूम्रपान से शरीर को काला बना रहा था। सब थे, पर कोई रामनाम में लीन नहीं था। सद्गुरु (रामानंद ?) की कृपा से कबीरदास को यह महामंत्र मिल गया था। उस समय मुनि थे, पीर थे, दिगंबर थे, योगी थे, जंगम थे, ब्राह्मण थे, संन्यासी थे, पर सभी माया के चक्कर में पड़े हुए थे। किसी किसी संप्रदाय में तोप-बंदूकें तक चला करती थीं। कबीरदास हैरान होकर लोगों से कहा करते थे कि यह भी अजब योग है कि महादेव के नाम पर पंथ चलाया जाता था। लोग बड़े-बड़े महन्त बनते हैं, हाट बाज़ार में समाधि लगाते है और मौका पाते ही तोप-बंदूक लेकर पिल पड़ते हैं। भला दत्तात्रेय ने भी कभी मवासिया (क़िले) तोड़ीं या चढ़ाई की थी ! शुकदेव ने भी कभी तोप संग्रह किये थे, नारद ने भी कभी बंदूक दागी थी ?"

ऐसा जोग न देखा भाई। भूला फिरै लिये गफिलाई ॥
महादेव को पंथ चलावै। ऐसो बड़ो महंत कहावै ॥
हाट बजारै लावै तारी। कच्चा सिहि माया प्यारी ॥
कब दत्तै मावासी तोरी। कब सुकदेव तोपची जोरी ॥
नारद कब बंदूक चलाया। व्यासदेव कब बंब बजाया ॥

—**कबीर बीजक**, (संपा० शुकदेव सिंह, पृ० 103)

"अजीब हैं ये विरक्त, जिनकी सोने की गद्दियाँ जगमगा रही हैं, हाथी-घोड़ों के ठाठ लगे हैं, करोड़पतियों की-सी शान है। रंग-ढंग से मालूम होता है कि यह नागा लोगों की कुंभ की चढ़ाई जैसी कोई घटना रही होगी। इस प्रकार बहुधा विचित्र बाह्याडंबर मूलक साधनाओं के बीच कबीर दास ने अपनी प्रेम-भक्ति की साधना शुरू की थी।" (**कबीर**, पृ० 128)

हठयोगी परम्परा की चर्चा करते हुए डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आठवीं शती के सरोरूहपाद (सरहपा) नामक आरम्भिक सहजयानी सिद्ध से एक उद्धरण देते हैं, जो बहुत मनोरंजक है—

"ब्रह्मणेंहि म जाणन्तहि भेऊ। एवइ पढ़िअउ ऐ च्चऊवेउ।
मट्टी पाणी कुस लइ पढ़न्त। घरहिं बइसी अग्गि हुणन्तं।
कज्जे विरहिअ हुअवह होमे। अक्खि डहाविअ कडुए धूम्में।

—सरहपाद, **दोहाकोश** (दोहा 1 एवं 2)

ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए थे। जब हुए थे, तब हुए थे। इस समय तो वे भी वैसे ही पैदा होते हैं जैसे दूसरे लोग। तो फिर ब्राह्मणत्व कहाँ रहा ? यदि कहो कि संस्कार से ब्राह्मणत्व होता है तो चाण्डाल को भी संस्कार देकर क्यों नहीं ब्राह्मण हो जाने देते ? अगर कहो कि ये लोग हाथ में कुश-जल लेकर घर में बैठे हवन करते हैं; यदि आग में घी डाल देने से मुक्ति होती हो तो क्यों नहीं सबको डालने देते ? होम करने से मुक्ति हो या नहीं, धुआँ लगने से आँखों को कष्ट जरूर

होता है। सिद्धों की यही खरी-खरी आलोचना और स्पष्टवादिता की परम्परा कबीर ने आगे चलाई।

जी० एच० वेस्टकॉट के '**कबीर एंड द कबीरपंथ**' (पृ० 37 से 40 तक) में कबीर की बानी से निम्न उद्धरण अनुवाद में दिये हैं—

"माला के मनके लकड़ी के हैं, देवता पत्थर के। गंगा जमुना पानी है। राम और कृष्ण मर चुके हैं। चारों वेद सिर्फ़ काल्पनिक कहानियाँ हैं।"

"अगर पत्थर पूजने से भगवान मिलते तो मैं पर्वत पूजूंगा। इन मूर्तियों के पत्थर से तो घर की चक्की भली है, जिसका पीसा आटा लोग खाते हैं।"

"अगर पानी में निमज्जन करने से मुक्ति मिलती तो मेंढक तो सदा पानी में डूबे रहते हैं। इन मेंढकों की तरह ये लोग हैं, जो बार बार 'गरभवास' में पड़ते हैं।"

"हथौड़े से पत्थर में से मूर्ति बनती है। उसके छाती और पैर होते हैं। अगर मूर्ति सच्ची है तो वह हथौड़ेवाले को ही खा जायेगी।"

"गर्भवास में रहते हुए न कोई जाति होती है, न वंश; ब्रह्म के बीज से सारी सृष्टि बनी है।

"अगर तू ब्राह्मण स्त्री से जनमा है, तो तू और मार्ग से क्यों नहीं आया? '—**तुम कत बाम्हन, हम कत शूद। हम कत लोहू, तुम कत दूध।**' कबीर कहता है कि जो ब्रह्म का विचार करता है, वही ब्राह्मण है।"

"पानी मैला है, धरती मैली है। जन्म का समय मैला है, मृत्यु का समय मैला है। सारा नाश मैला है।"

"आँखों में मैला, जुबान भी मैली, कान भी मैले। उठते-बैठते मैलापन आदमी को चिपटता है, मैलापन अन्त में गिरता है।"

"जाल में फँसाना सब जानते हैं, पर उससे छूटना बहुत कम लोगों को आता है।"

कबीर की कई उक्तियाँ और पद सिखों के आदिग्रंथ में 'साखी' के रूप में सम्मिलित हैं। मैकालिफ़ के '**द सिख रिलीजन**, (दो खण्डों में) और साहित्य आकदेमी तथा यूनेस्को से प्रकाशित '**सेलेक्शन फ्राम सैक्रेड बुक ऑफ दि सिख्स**' में ऐसे कई पद मिलते हैं।

कबीर ऐसे निरे रहस्यवादी नहीं थे, जो किसी आध्यात्मिक पर्वत-कंदरा में ही रहते थे, जन कोलाहल से दूर। बनारस के सीधे-सादे जुलाहे की कुटिया से, (जहाँ वे रहते थे) और असीघाट (जहाँ वे मरे, ऐसा माना जाता है) के बीच उन्होंने धर्म के नाम पर बहुत कुछ ढोंग-धतूरा, मिथ्या दंभ चलते हुए देखा होगा और वे यह सब देखकर गूंगे-बहरे नहीं बने रहे। वे सच बोलते रहे, जिनके लिए उस समय बहुत अधिक साहस आवश्यक था। वह ऐसा युग था, जब युक्तियुक्तता का

अभाव था और रूढ़ स्थापित धर्म के विरोध को सबसे बड़ा पाप माना जाता था। परन्तु कबीर ने यह धर्मद्रोह बड़ी निर्भीकता से व्यक्त किया और उसका प्रभाव भी ऐसा पड़ा कि हिन्दू उन्हें मजबूर होकर संत मानकर आदर देने लगे। उनका पंथ कबीर पंथ चल पड़ा।

अध्याय के अन्त में, कबीर का एकपद, जिसमें उनका दर्शन ऐसे काव्यमय ढंग से व्यक्त हुआ, रवींद्रनाथ के अंग्रेजी अनुवाद के हिन्दी रूपान्तर के साथ दिया जा रहा है।

(ध्यातव्य है कि आचार्य क्षितिमोहन सेन ने मौखिक परम्परा से ये पद सुने और गुरुदेव को सुझाये। इसीलिए उनके मूल रूप उसी ढंग से संकलित प्रकाशित कबीर बानी में नहीं मिल पाते। इसलिए गद्य अनुवाद से संतोष किया जा रहा है)।

तीरथ में तो सब पानी है, होवे नहीं कछु अन्हाय देखा।
प्रतिमा सकल तो जड है भाई, बोलें नहीं बोलाय देखा।
पुरान कोरान सबै बात है, या घट का परदा खोल देखा।
अनुभव की बात कबीर कहैं, यह सब है झूठी पोल देखा॥

—कबीर (द्विवेदी, पृ० 262)

—पवित्र तीर्थ स्थानों में केवल पानी है, मैं जानता हूँ, वे व्यर्थ हैं। क्योंकि मैं उनमें नहाया हूँ। सारी मूर्तियाँ बेजान हैं, वे गूँगी हैं, मैं जानता हूँ क्योंकि मैंने उन्हें चीख-चीखकर पुकारा है। पुराण और क़ुरान निरे शब्द हैं, परदा उठाकर मैंने देखा है। कबीर अपने शब्दों के अनुभव से बोलता है, क्योंकि उसे अच्छी तरह पता है कि बाक़ी सब बातें झूठी हैं।

स्व० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा संपादित एवं संकलित 'कबीर वचनावली' ग्रंथ में कबीर ने साधकों को 'शब्द' (ब्रह्म) पहचानने को कहा है।[1] मूल पद का रूपान्तर निम्न प्रकार है—

शब्द को खोजो, शब्द को जानो।
शब्द से शब्द को पहचानो॥
शब्द ही आकाश, शब्द ही पाताल।
शब्द ही सार है, शब्द ही संसार॥
शब्द ही वचन में, शब्द ही श्रवण में।
शब्द ही मूर्ति और शब्द ही रूप॥
शब्द ही है वेद और शब्द ही ध्वनि।
शब्द ही शास्त्र है नाना रूप से गाया गया॥
शब्द ही दृश्य है शब्द ही अदृश्य।
शब्द ही सारा ब्रह्माण्ड रचता है॥
कबीर कहता है कि शब्द को परखो।
शब्द ही ईश्वर है भाई॥

संस्कृत काव्य-शास्त्रियों और पश्चिम के सौन्दर्य-शास्त्रियों में यह भी लम्बी बहस का विषय है कि रहस्यवादी कविता का क्या उन्हीं मानदण्डों से मूल्यांकन करना चाहिए, जिनसे शुद्ध कविता का किया जाता है? अंशतः यह वही पुराना भेद—उदात्त और सुन्दरता के बीच है। भारतीय काव्यशास्त्र पर लिखनेवाले सर्वसंग्राहक समीक्षकों में उसे 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा। दूसरी ओर, हिन्दी में कुछ रूढ़िवादी और दकियानूसी आलोचक आज भी हैं; जो कबीर को कवि ही नहीं मानते। बल्कि उन्हें उन संतों और भक्तों की कोटि में गिनते हैं, जिन्होंने कुछ ऊबड़-खाबड़ पद्य-रचना की है। ऐसे समीक्षक काव्य में रीति, शैली आदि की चमक या परिपूर्णता पर कुछ अधिक बल देते हैं। परन्तु यदि एक महाकवि का एक लक्षण उसका विलक्षण या विशिष्ट व्यक्तित्व भी है तो कबीर निःसन्देह ऐसे कवि हैं।

कबीर कभी-कभी अस्पष्ट बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, यद्यपि वे

1. कबीर वचनावली, द्वितीय संस्करण, 1920 पृष्ठ 189

उतने अस्पष्ट नहीं होते जितने कि कुछ आधुनिकतावादियों के होते हैं। अंग्रेज़ी कवि विलियम ब्लेक या जर्मन कवि रेनर मारिया रिल्के की तरह कबीर में भी ऐसे अनेक स्थल हैं, जो सुनने में बहुत सरल लगते हैं, परन्तु उनमें गहरा आध्यात्मिक अर्थ छिपा रहता है। सच तो यह है कि कबीर निरे कवि नहीं थे। उससे अधिक बहुत कुछ थे। वे एक ही समय दो आयामों में जीते थे। उनके लिए ईश्वर-चेतना और कविता दो विश्लेषण की' जानेवाली अलग-अलग मानसिक स्थितियाँ नहीं थीं। जर्मन रहस्यवादी मेईस्टर एखार्ट ने ठीक ही कहा था—"मनुष्य को परम में एक होना चाहिए। अपने में और उस परम तत्त्व में एकता खोजनी चाहिए। जिसका अर्थ है कि उसे ईश्वर और केवल ईश्वर ही के दर्शन करने चाहिए। और उसके बाद उसे 'लौट' आना चाहिए, जिसका अर्थ यह होता है कि उसे ईश्वर का ज्ञान होना चाहिए और उसकी चेतना भी होनी चाहिए।"

कबीर उसी परम दैवी आनन्द से प्रेरित थे, जिस कारण वे पूछते हैं: "अरी कमलिनी तू तो पानी में जन्मी, पानी में रही, सदा पानी से घिरी रही, कहीं भी कोई आग तेरे आसपास नहीं थी, फिर भी तू क्यों कुम्हला गयी ?"

"काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी,
तेरे ताल सरोवर पानी।..."

—कबीर ग्रंथावली (संपा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० 183)

कविता के द्वारा कविता से परे की यह विशिष्ट संवेदनशीलता जो संप्रेषित होती है, उसकी एक महत्त्वपूर्ण कुंजी है—कवियों की भाषा। प्रत्येक कवि अपना ख़ास मुहावरा चुनता है, और अपने काल्पनिक श्रोताओं को कविता सुनाता है। कबीर की महानता इसमें है कि उसने उस भाषा की कोई परवाह नहीं की, जो पंडित समाज की संस्कृत या राजदरबार की फ़ारसी थी। पर वह अपने पद और गीत ऐसी मिश्रित भाषा में रचने लगे, जिसे विद्वानों ने 'सधुक्कड़ी' कहा है। डॉ० गोविंद त्रिगुणायत का कथन है, "कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया। उनकी वानी में हिंदी, उर्दू, फ़ारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है, साथ ही साथ अवधी, खड़ी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है।" **कबीर की विचारधारा** (पृष्ठ 295)। संवत् 1561 और 1881 (यानी ईस्वी 1508 और 1828) की दो प्राचीन पांडु-लिपियों के आधार पर डॉ० श्यामसुन्दर दास द्वारा संपादित **'कबीर ग्रंथावली'** सबसे पहला और प्रामाणिक संकलन है। दूसरा है डॉ० रामकुमार वर्मा का **'संत कबीर'**, जिसमें गुरुग्रंथ साहिब में कबीर के जो पद हैं, वे भी संकलित हैं। इन दोनों ग्रंथों में हम पाते हैं—

1. पंजाबीपन
2. भोजपुरी के संज्ञा और क्रिया रूप
3. खड़ी बोली के कुछ रूप
4. विषयानुसार भाषा
5. प्रादेशिक भाषाओं में से कई देशज शब्द
6. सीधी-सादी बेलाग अभिव्यंजना
7. प्रतीकवाद और उलटबासियाँ
8. किसी भी एक मानक रूप का अनुकरण नहीं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' से लिखा है कि संत-कवियों ने उस खड़ी बोली का प्रयोग किया, जो उन्हें सिद्धों से विरासत में मिली। डॉ० त्रिगुणायत का इस बात से मतभेद है। वह कहते हैं कि कबीर ने अपने आपको केवल पूरबी बोली तक सीमित नहीं रखा, बल्कि ऐसी सब बोलियों का प्रयोग किया, जिनसे उनकी बानी ठौर-ठौर के साधुओं के लिए सहज प्रेषणीय बनती। कबीर जब हिंदू पंडितों की बात करते हैं तो फ़ारसी मिश्रित हिंदी प्रयुक्त करते

हैं। उनके पदों में यदि बंगाली क्रिया-रूप 'आछिलो' आदि मिलते हैं, तो राजस्थानी और लहँदा के भी रूप पाये जाते हैं। उनकी भाषा की यह विशेषता है कि वह एक साथ सरल और अर्थवत्ता की दृष्टि से उतनी ही कठिन है। मौखिक परंपरा के कारण एक ही पद के अनेक पाठ मिलते हैं, कबीर के पदों के मामले में यह एक और बड़ी कठिनाई है। कई शब्दों के रूप इतने बदल गए हैं और उनमें इतना अपभ्रंश हुआ है कि उनका मूल या प्रामाणिक रूप खोजना या उत्खनित कर पाना कठिन है। अपनी अस्पष्टता और अनेकार्थवाचिता के कारण कबीर की 'उलट-बाँसियों' की भाषा को 'संधा-भाषा' (विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार) या 'संध्या भाषा' कहा गया है। यानी वह या तो कई भाषाओं की संधि है, या संध्याकाल के धुंधलके की तरह की भाषा है। डॉ० शशिभूषण दासगुप्त ने अपनी पुस्तक 'ऑब्सक्योर रिलीजस कल्ट्स' में ऐसी पहेली बुझौवल वाली भाषा के कई कारण गिनाये हैं। या तो वे शत्रु को जान-बूझकर चक्कर में डालने के लिए प्रयुक्त की गई है, या वह अपभ्रंश और हिन्दी का मिश्रण है, या फिर वह बंगाल और बिहार की सीमा रेखा की भाषा है। संस्कृत में 'संधि' शब्द रूपकात्मक या गुह्य भाषा के लिए प्रयुक्त होनेवाला शब्द है। हो सकता है, कबीर ने जान-बूझकर इस भाषा का प्रयोग किया हो, जैसे तांत्रिक अपनी गुप्त धारणाओं या लोक-विलक्षण विचित्र क्रियाओं को जनसाधारण में व्यक्त करना उचित नहीं समझते थे। कारण कुछ भी रहे हों, कबीर ने पंडितों की क्लिष्ट संस्कृत के जवाब में, मजाक में ही क्यों न हो, ऐसी भाषा का प्रयोग किया। उसके कुछ नमूने नीचे 'परस्पर विरोधाभास' अनुच्छेद में दिये जा रहे हैं।

विरोधाभास

ये पद 'उलट बाँसियाँ' या 'उल्ट-बतियाँ' कहलाते हैं। कबीर ग्रंथावली से एक पद उद्धृत किया जा रहा है —

ऐसा अद्भुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उभैषे।
मूसा हसती सौं लड़ै, कोई बिरला पेषै॥
मूसा पैठा बाँबि म लाटै सापणि धाई।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई॥
चींटी परबत उषप्यां, ले राख्यो चौड़े।
मुर्गा मिनकी सूं लड़ै, झल पाँणीं दौड़े॥
सुरहीं चूषै बछतलि, बछा दूध, उतारै।
ऐसा नवल गुणीं भया, सारदूलहि मारै॥

भीस सुक्या बन बीझ मै सास सर मारै।
कहै कबीर ताहि गुर करौ, जो या पद बिचारै॥

—कबीर ग्रंथावली (श्यामसुंदर दास, पृ 141)

इसी प्रकार, एक दूसरी उलटबाँसी में कबीर एक दूसरी बुझौवल बुझाते हैं—

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाइ।
पहलैं पूत पीछे भई माई, चेला के गुरु लागै पाइ॥
जल की मछरी तरवर ब्याई, पकरि बिलाई मुरगै खाई।
बैलहिं डारि गूंति घरि आई, कुत्ता कूं ले गई बिलाई॥
तलि करि साषा ऊपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै ताकूं तीन्यूं त्रिभुवन सूझै॥

कबीर ग्रं०, (संपा० माता प्र० गुप्त, पृ० 149)

डॉ० हज़ारी प्रसाद ने 'कबीर' ग्रंथ में इस पद की चर्चा 'भोगपरक रूपक और उलटबाँसियाँ' अध्याय में की है। कबीर ग्रंथावली से ही एक और पद उद्धृत करते हुए वे विश्वनाथ, विचारदास आदि अन्य परंपरावादियों द्वारा उल्लेखित सांकेतिक शब्दों के अभिप्राय भी स्पष्ट करते हैं। पद निम्न प्रकार है—

सन्तो, जागत नींद न कीजै।
काल न खाय, कल्प नहिं ब्यापै, देह जरा नहिं छीजै॥
उलटि गंग समुद्रहिं सोखै ससि औ सूर गरासै।
नवग्रह मारि रोगिया बैठे जल में बिंब प्रकासै॥
बिनु चरणन को दस दिसि धावै, बिन लोचन जग सूझै।
ससा सो उलटि सिंह को ग्रासै, ई अचरज कोउ बूझै॥
औंधे-घड़ा नहीं जल डूबै, सूधे सों घट भरिया।
जेहि कारण नर भिन्न भिन्न, करू गुरुप्रसाद तें तरिया॥
पैठि गुफा में सब पद देखै, बाहर कछुक न सूझै।
उलटा बान पारिधिहि लागे, सूरा होय सो बूझै॥
गायन कहै, कबहु नहिं गावै, अनबोला नित गावै।
भृवर बाजी पेखनी पेखै, अनहद हेतु बढ़ावै॥
कथनी-वदनी निजुकै जोहैं, ई सब अकथ कहानी।
धरती उलटि आकासहिं बेधैं, ई पुरुषहिं की बानी॥
बिनां पियाला अमृत अचवै, नदी नीर भरि राखै।
कहै कबीर सो जुग जुग जीवै, राम-सुधारस चाखै॥

—बीजक से उद्धृत/कबीर (पृ० 89-90)

स्पष्टतः प्रथम वाचन में ये पद ऐसे लगते हैं, जैसे अर्थहीन प्रलाप हों। परन्तु

यहाँ हर शब्द का कोई न कोई अर्थ होता है : मन की उपमा मछली, जुलाहा, शिकारी, हाथी, निरंजन से; आत्मा का उल्लेख पुत्र, बछड़ा, शिकार, सिंह, चूहा, भौंरा, योगी से; माया को ठगिनी, कुट्टनी, स्त्री, बकरी, गाय, बिल्ली के रूप में; संसार को जंगल या सागर से; इंद्रियों को पाँच कुमारियों या दोस्त आदि शब्दों से संकलित किया जाता है। ऐसे पदों में कुछ संख्यावाचक अंक भी आते हैं : पाँच तत्त्व या इंद्रियाँ हैं : तीन गुण या लोक या काल हैं; आठ हठयोगियों के शरीर-चक्र जो कि 'एंडोक्रीनिक ग्लैंड्स' की तरह ग्रंथियों द्वारा हारमोन रस चुवाते रहते हैं। जैसे एक दोहे में कबीर कहते हैं कि 'चौदह चंद्रों ने चौंसठ दीये जलाए। ऐसा कौन-सा चंद्र है, जहाँ गोविंद नहीं हैं। यहाँ चौंसठ कलाएँ हैं, चौदह विद्याएँ हैं।

ऐसी विरोधाभास भरी उक्तियों की परंपरा उपनिषदों से चली आती है। 'ऊर्ध्वमूल अधोशाखःवृक्ष' और दो पक्षियों (द्वा सुपर्णा···) के उदारण प्रसिद्ध हैं। तैत्तरीयोपनिषद् में एक अंश है, जिसमें कहा गया है, 'आकाश पृथ्वी में और पृथ्वी आकाश में रहती है।' यह परंपरा वज्रयानी बौद्धों ने भी आगे चलाई। कदाचित् कबीर ने वहीं से यह पद्धति ग्रहण की।

कबीर में विविध छंदों के प्रयोग या उनका कौशल या चमत्कार नहीं दिखाई देता। वे सामान्य छंद जैसे दोहा (या साखी) सबद और रमैनी का प्रयोग करते हैं। रमैनी चौबाई या चौपाई दोहे थे। मुख्यत: वे दो पंक्तियों के छोटे-छोटे दोहे हैं या लंबे पद हैं, जो गाये जाते थे। उन पदों की धुनें लोकगीतों से ली गई हैं। हो सकता है, सम्मिलित गायन, कीर्तन और भजन के कारण इन पदों में इतनी पुनरावृत्तियाँ मिलती हैं। उनमें ऐसे कोई छंद नहीं हैं, जो पिंगल या छंदशास्त्र की रूढ़ियों से बँधे हुए हों। इन छंदों के अपने ही नियम हैं और कबीर अपने ही अन्तर्लय के बंध का मौलिक रूप से अनुसरण करते प्रतीत होते हैं।

श्री एम० ए० ग़नी ने 'मुग़ल दरबार में फ़ारसी भाषा के इतिहास' ग्रंथ में कहा है कि "हमन है इश्क़ मस्ताना, हमन को होशियारी क्या' शायद उर्दू की सबसे पहली ग़ज़ल है। परन्तु इस कथन की पुष्टि नहीं मिलती। दखनी में कुछ और पुरानी ग़ज़लें मिलती हैं। रामबाबू सक्सेना के 'ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर' में 'चंदरभान बिरहमन' का भी जिक्र है। कबीर ने उर्दू फ़ारसी की बहरें नहीं अपनाई थीं, फिर भी हो सकता है कि उन्होंने सूफ़ी क़लाम सुना हो, बैतें सुनी हों, और उन्हीं रचनाओं की शैली पर कबीर में भी इश्क़े-मजाज़ी और इश्क़े-हक़ीक़ी का संदर्भ मिलता हो।

कबीर कोई सचेतन नागर कवि नहीं थे। वे अपना उल्लास और संत्रास ऐसी भाषा में व्यक्त करना चाहते थे, जो उन्हें सहज मिलती गई। वे न तो तराशे हुए शब्द की प्रतीक्षा करते थे, न उन्हें रसज्ञ भावक की तालियों की परवाह थी। इसलिए उनकी रचना में एक अनगढ़पन और भदेसपन है जो कि उनमें अद्भुत आकर्षण का निर्माण करता है। उनका छन्दोविधान बहुत सरल है फिर भी वह मन को छूता है और अपनी अनुगूंज छोड़ जाता है। सारे दोहों या पदों के अंत में रचनाकार का नाम आता है। यह उस जमाने का एक तरह का 'कॉपीराईट' था। क्योंकि उस जमाने में अनगिनत अनुकरण करनेवाले थे और भाव-शाबिलक थे। मौलिकता का ठप्पा लगना जरूरी था और इसीलिए मध्ययुगीन कविता में ऐसी अंतिम पंक्तियाँ मिलती हैं "मीरा' के गिरधर नागर" या "तुलसी कहत···" या 'सूर श्याम" इत्यादि।

यद्यपि परवर्ती हिंदी कवियों ने कई सतसइयाँ लिखी हैं, जो आर्य सप्तशती या गाथा सप्तशती के ढंग पर थीं; फिर भी कबीर ने जो दोहे लिखे, उनका विशेष

उल्लेख किया जाना चाहिए। कबीर को जात की के जादुई अंक से कोई मोह नहीं था।

अन्य काव्यगुण

मराठी कवि नामदेव, पंजाबी कवि नानक, तेलुगु कवि वेमना, कन्नड़ कवि बसवेश्वर और गुजराती कवि 'आखो' कबीर के ही समान उदारमना मानवतावादी थे, जो जात-पाँत, पंथ, संप्रदाय के बंधनों को तोड़कर अपनी रचनाएँ करते थे। यह उस युग को ध्यान में रखते हुए और भी कठिन था, क्योंकि उस समय अंधश्रद्धा और रूढ़िवादिता जन-मन को जकड़े हुए थी। अब हिन्दी जगत में कबीर को प्रथम विद्रोही कवि और सर्वप्रथम आधुनिकतावादी कवि माना जाता है। (जून 1966 के 'पूरबी टाइम्स' 'कबीर विशेषांक' में यशपाल, संपूर्णानंद, अमृतलाल नागर, अली सरदार जाफ़री, फ़िराक़ गोरखपुरी, प्रकाशचंद्र गुप्त, ई० बेली-शेव आदि के लेख हैं) साथ ही एक तरुण समालोचक ठाकुरप्रसाद सिंह ने तो पूरी गंभीरता से कबीर को आधुनिक हिंदी 'बीटनिक' कविता का पितामह कहा है।

इन सब लेखों में एक बात पर विशेष जोर है कि कबीर श्रोता या पाठक को कैसे झकझोरते हैं। कबीर पढ़ने के बाद कोई भी पूर्ववत् नहीं रह सकता। उसमें परिवर्तन हुए बिना नहीं रहता। कबीर उसके मर्म को छू लेते हैं। वे अपने व्यक्तिगत अनुभव से रचना करते हैं। एक ग़रीब जुलाहे के नाते सनातनी कट्टर हिंदुओं ने [illegible] जहबी मुसलमानों ने उनके साथ जो सलूक किया; जो अन्याय उन्हें सहना पड़ा, वह सारा अनुभव एक गहरे विश्वात्मक मानवीय संदर्भ से वे जोड़ देते हैं। उनका व्यक्तिगत प्रतिषेध लाखों मूक जनसाधारण का प्रखर स्वर बन जाता है।

फ़िराक़ गोरखपुरी के अनुसार पूर्वी उत्तर प्रदेश की गाँव की ज़बान को कबीर ने एक नया अर्थ प्रदान किया। उन्होंने उस बोली में मानों बिजली भरकर जानदार बना दिया। कबीर द्वारा किये गये इस भाषा रूप-परिवर्तन के फ़िराक़ ने अनेक उदाहरण दिये हैं। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी वे भारतीय-साहित्य के सबसे महान रचनाकारों में एक थे। कबीर जीवन को एक क्षणभंगुर अवस्था मानते थे। वे टी० एस० एलियट जैसे कहते हैं, "इस मुट्ठी भर मिट्टी में छिपा भयानक 'हॉरर' दिखा दूँगा।" वैसे ही वे अपने दोहों में इसे 'गुलाब में लगा कीड़ा' (—शेक्सपीयर) व्यक्त करते हैं—"इस पल-छिन में क्या प्रलय हो जायेगा, यह हम नहीं जानते और फिर भी कल के लिए मनसूबे और योजनाएँ बनाते रहते हैं। मौत तो ऐसे झपटती है जैसे बाज कबूतर पर।"

माली आवत देख के कलियन करी पुकार।
फूली फूली चुन लई, काल्हि हमारी बार॥

माटी कहै कुम्हार से, तू का रूँदै मोय।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रूँदूँगी तोय॥

'उमर-ख़ैयाम' के 'कूजा-नामा' में ऐसे ही आशय की रूबाई मिलती है।

गाँधी जी ने कबीर का यह पद अपनी 'आश्रम भजनावलि' में नित्य प्रार्थना के लिए चुना था—

"झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला-पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त्व गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागै, ठोक ठोक के बीनी चदरिया।
सो चादर सुर-नर-मुनि ओढ़ि, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ि, ज्यों के त्यों धर दीनी चदरिया॥

(शब्दा० पृ० 74)

कपड़े बुनना कबीर की जीविका थी। गाँधीजी ने भी कातने-बुनने पर बड़ा ज़ोर दिया। कई मामलों में भारत के इन दो महापुरुषों में बड़ी समानता है; यद्यपि दोनों इतिहास के दो अलग-अलग युगों और परिस्थितियों में कार्य करते रहे हैं।

कबीर की कविता में एक और गुण है। वह कभी बासी नहीं होती। कबीर ने मनुष्य की मूलभूत कामना पर सही उंगली रखी, वह है, आंतरिक शांति की खोज। एक ऐसे समाज में जिससे मनुष्य जुड़ नहीं पाता है, उसका संत्रास क्या है? जहाँ धर्म कट्टरपंथी आचार-संहिताओं में बदल जाते हैं, जहाँ दर्शन निरी लफ़्फ़ाज़ी और शब्द-छल है? जहाँ विवेक का संकट है और नेतृत्व पंगु। वहाँ कबीर की कविता बड़ी प्रेरणा का काम देती है। वह कई बार समाज के ढोंग-धतूरे और दुश्चित्तेपन का पर्दाफ़ाश करते हैं; कथनी-करनी का अंतर बताते हैं। तथाकथित पढ़े-लिखे गण्यमानों का खोखलापन दिखाते हैं और फिर भी उनमें कहीं निराशा का स्वर नहीं है। कबीर का काव्य जगत् 'आँसुओं की घाटी' नहीं, वह विरह की काली लंबी रात मात्र नहीं; वह ऐसी कोई खाई नहीं— जो कभी पार नहीं की जा सकती उनका स्वर एक ग्रामीण का-सा अक्खड़ और विद्रोही है। उसे सदा 'पार की आशा' लगी रहती है। उनकी आशा के स्रोत निस्संदेह आध्यात्मिक हैं, और यह तर्क दिया जा सकता है कि आज के 'मूल्य हीनता' के युग में यह सब अयथार्थ लगता है। साथ ही, कबीर की आस्तिकता को स्वीकार न करने पर भी उनकी कविता में बहुत कुछ बचा रहता है, जो मूल्यवान है। कबीर का आनंद लेने के लिए कबीर-पंथी होना ज़रूरी नहीं। कवि के नाते इसी में उनकी चिरंतन श्रेष्ठता निहित है। वे दिक्काला-तीत हैं। उनकी काव्य-दृष्टि उच्चतर और महत्तर है। वे इस बात की परवाह नहीं करते थे कि तेरहवीं या चौदहवीं शती में हिंदुस्तान की राजनैतिक व्यवस्था क्या थी

उन्होंने अपने जमाने की साहित्यिक क्रांतिकारिता या परंपरा की भूल-भुलैया की भी परवाह नहीं की। उन्होंने सिर्फ़ वही किया, जिसे नीत्शे 'हाँ-कहना' कहते हैं। किसी भी युग में, ऐसा करने के लिए बड़े साहस की जरूरत है। कबीर में सत्य कहने का अपार धैर्य था, और उसके परिणाम सहन करने की वह हिम्मत थी। कबीर की कविता, इसी कारणों से, एक अन्य प्रकार की कविता है। वह कई रूढ़ियों के बंधन तोड़ती है। वह एक मुक्त आत्मा की कविता है।

अबिनासी दुलहा कब मिलिहो, भक्तन के रछपाल।
जल उपजी जल ही सों नेहा, रटत पियास पियास॥
मैं ठाढ़ी बिरहन मग जोऊँ, प्रियतम तुमरी आस॥
छोड़े गेह नेह लगि तुमसों, भई चरन लवलीन।
ताला-बेलि होति घर भीतर, जैसे जल बिन मीन॥
दिवस न भूख रैन नहिं निद्रा, घर अँगना न सुहाय।
सेजरिया बैरिन भइ हमको, जागत रैन बिहाय॥
हम तो तुमरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार।
दीन-दयाल दया करि आओ, समरथ सिरजनहार॥
कै हम प्रान तजति हैं प्यारे, कै अपनी कर लेव।
दास कबीर बिरहा अति बाढेव, हमको दरसन देव॥

कबीर (द्विवेदी, पृष्ठ 329)

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया,
तलफ तलफके भोर किया॥
तन-मन मोर रहँट-अस डोलै,
सून सेज पर जनम छिया॥
नैन चकित भये पंथ न सूझै,
साँई बेदरदी सुध न लिया॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हरो पीर दुख जोर किया॥

—कबीर (द्विवेदी, पृष्ठ 329)

पिया मिलन की आस रहौं कब लौं खड़ी।
ऊँचे नहिं चढ़ि जाय, मने लज्जा भरी॥
पाँव नहीं ठहराय, चहूँ गिर-गिर पड़ें।
फिर फिर चढ़ईं सँम्हारि, चरन आगे धरें॥

अंग अंग थहराइ, तो बहुबिधि डरि रहूँ।
करम-कपट मग धेरि, तो भ्रन में परि रहूँ।
बारि निपट अनारि, वे तो झीनी गैल है।
अटपट चाल तुम्हार, मिलन कस होइ है॥
छोरो कुमति-बिकार सुमति गहि लीजिये।
सतगुरु शब्द सम्हारि, चरन चित दीजिये॥
अन्तरपट दे खोल, शब्द उर लावरी।
दिलबिच दास कबीर, मिलैं तोहिकों बावरी॥

अपुनपौ आप ही बिसरो।
जैसे सोनहा काँच मंदिर मैं भरमत भूकि मरो।
जो केहरि बपु निरखि कूल-जल प्रतिमा देखि परो।
वैसेहिं गज फटिक सिला पर दसननि आनि अरो।
मरकट मुठी स्वाद ना बिसुरै घर घर नटत फिरो।
कह कबीर ललनी के सुवना तोहि कवन पकरो॥
—शब्दावली (भाग-2) वेलवेडियर, पृष्ठ 110

ऐसा भेद बिगूचन भारी।
बेद कतेब दीन अरु दुनियाँ, कौन पुरुष कौन नारी॥टेक॥
एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाँम एक गूदा।
एक जोति थैं सब उतपनाँ, कौन बाम्हन कौन सूदा॥
माटि का प्यंड सहजि उतपनाँ, नाद रू ब्यंद समाँनां।
बिनति गयाँ थैं का नाँव धरिहौ, पढ़ि गुनि भ्रम जाँनाँ॥
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई॥
कहै कबीर एक राँम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई॥
—कबीर ग्रंथावली (संपा० मा० प्र० गुप्त, पृ० 178)

तोको पीव मिलेंगे, घूँघट के पट खोल रे।
घट-घट में वही साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे।

1. यह पद सूरदास के एक पद—सूरसागर—काशी नागरी प्रकारिणी सभा से प्रकाशित, प्रथम खण्ड : पृ० 122-2 पर उद्धृत) से तुलनीय है।

धन जोबन को गरब न कीजै झूठा पचरँग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बार ले, आसन सों मत डोल रे।
जोग जुगत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

—कबीर (द्विवेदी, पृ० 350)

रहना नहिं देस बिराना है
यह संसार कागज की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँट की बाड़ी, उलझ-पुलझ मरि जाना है।
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

—कबीर (द्विवेदी, पृ० 308)

बुढ़िया हाँसि बोली।
(बुढ़िया) हाँसि बोले मैं नितहीं बारि मोसों कहु तरुनी कवनि नारि॥
दाँत गयल मोर पान खात, केस गयल मोर गंग न्हात।
नयन गयल मोर गजरा देत, बयस गयल पर-पूरुष लेत॥
जान पुरुषवा मोर अहार, अनजाने का करों सिंगार।
(कहहिं) कबीर बुढ़िया आनंद गाय, पूत भतारहि बैठि खाय॥

—कबीर बीजक (संपा०डॉ० वासुदेव सिंह, पृ० 184)

माया महा ठगिनि हम जानी।
निरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरा बानी॥
केशव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हू में पानी॥
जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी॥

—शबद 59, कबीर साहब की बीजक,
बेलवेडियर प्रेस (पृ० 52-53)

लाओ बाबा आगि जलाओ घरा रे
ता कारनि मन धंधे परा रे ।। टेक ।।
इक डाइनि मेरे मन मैं बसै रे,
नित उठि मेरे जिय को डसै रे ।
या डाँइन के लरिका पाँच रे,
निस दिन मोहि नचावैं नाँच रे ।।
कहै कबीर हँ ताको दास,
डाँइनि के सँगि रहै उदास ।।

—कबीर (द्विवेदी, पृ०311)

अरे इन दोउन राह न पाई ।
हिंदू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई ।
वेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई ।।
मुसलमान के पीर-औलिया मुर्गी मुर्गा खाई ।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करै सगाई ।।
बाहर से इक मुर्गा लाये धोय-धाय चढ़वाई ।
सब सखियाँ मिलि जेंवन बैठीं घर-भर करै बड़ाई ।।
हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई ।।

ना जाने साहब कैसा है ।
मुल्ला होकर बाँग जो देवे
क्या तेरा साहब बहरा है ।।
कीड़ी के पग नेवर बाजे
सो भी साहब सुनता है ।।
माला फेरी तिलक लगाया
लंबी जटा बढ़ाता है ।।
अंतर तेरे कुफर-कटारी
यों नहिं साहब मिलता है ।।

—कबीर (द्विवेदी, पृ० 272)

पंडित बाद बदंते झूठा ।
राम कह्यां दुनियाँ गति पावै, खांड कह्यां मुख मीठा ।।

पावक कहाँ पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई ।।
भोजन कहाँ भूख जे भाजै, तो सब कोई तिरि जाई ।।
नरक साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै ।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जंगल में वहुरि न सुरतै आनै ।।
साँची प्रीति विषै मायासू, हरि भगतनि-सूं दासी ।
कहै कबीर प्रेम नहिं उपज्यौ, बाँध्यो जमपुरि जासी ।।
—**कबीर ग्रंथावली** (संपा० मा० प्र० गुप्त, पृ० 170)

ना मैं धरमी, नहीं अधरमा, ना मैं जती न कामी हो ।
ना मैं कहता ना मैं सुनता, ना मैं सेवक-स्वामी हो ।
ना मैं बंधा ना मैं मुक्ता, ना मैं बिरत न रंगी हो ।
ना काहू से न्यारा हुआ, ना काहू के संगी हो ।
ना हम नरक-लोक को जाते, ना हम सुर्ग सिधारे हो ।
सब ही कर्म हमारा कीया, हम कर्मन तें न्यारा हो ।
या मत को कोई विरले बूझै, सो अटर हो बैठे हो ।
मत कबीर काहू को थापै, मत काहू को मेटे हो ।।
—**कबीर** (द्विवेदी, पृ० 279)

संतन जात न पूछो निगुनिया ।
साध ब्राहमन साध छत्तरी, साधै जाती बनियाँ ।
साधनमाँ छत्तीस कौम है, टेढ़ी तोर पुछनियाँ ।
साधै नार साधै धोबी साधै जाति है बरियाँ ।
साधनमाँ रैदास सन्त हैं, सुपुत्र ऋषि सो भंगियाँ ।
हिन्दू-तुर्क दूई दीन बने हैं, कछू नहीं पहचनियाँ ।।
—**कबीर** (द्विवेदी : पृ० 231)

तेरा मेरा मनुआ कैसे इक होई रे ।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की देखी ।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यौ अरुझाई रे ।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे ।

मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे।
जुगन जुगन समुझावत हारा, कही न मानत कोई रे।
तू तो रंडी फिरे बिहंडी, सब धन डारे खोई रे।
सतगुरु धारा निर्मल बाहै, बामैं काया धोई रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।
—**कबीर** (द्विवेदी, पृष्ठ 324)

मोको कहाँ ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं छगरी, ना मैं भेंड़ी, ना मैं छुरी गँड़ास में।
नहीं खाल में, नहीं पूंछ में ना हड्डी ना माँस में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबै कैलास में।
ना तो कौन क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल-भर की तालास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में॥
—**कबीर** (द्विवेदी, पृ० 230)

कबीर के दोहे

भारी कहौं तो बहू डरौं, हलका कहूँ तो झूठा।
मैं का जांणों राम को, नैनहूँ कबहूँ न दीठा॥
ऐसा अद्भुत जिनि कथै, अद्भुत राखि लुकाई।
वेद कुरानौं गमि नहीं, कहाँ न को पतिआई॥
करता की गति अगम है, तूँ चल अपणैं उनमान।
धीरैं धीरैं पाँव दे, पहुंचैंगे परवान॥
नैनन की करि कोठरी पुतरी पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय॥
प्रीतम को पतिया लिखूं जो कहूँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ताकौं कहाँ संदेस॥
परबति परबति मैं फिर्‍या, नैन गँवाए रोइ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जातै जीवन होइ॥
नैन हमारे जलि गए छिन छिन लोड़ै तुज्झ।
नाँ तूँ मिलै न मैं खुसी ऐसी वेदन मुज्झ॥
सुखिया सब संसार है खाये अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर जागे अरु रोवै॥

कबीर पर चुनी हुई हिन्दी पुस्तकें

(यह सूची (स्व०) श्री कृष्णाचार्य, नेशनल लाइब्रेरी, बेलवेडियर, कलकत्ता से प्राप्त हुई थी; इसमें वे पुस्तकें भी सम्मिलित हैं, जिन्हें (स्व०) माताप्रसाद गुप्त ने **हिन्दी पुस्तक साहित्य** (1942) में संकलित किया था।)

कबीर-विषयक पुस्तकें

अग्रवाल, तारकनाथ

कबीर परिचय, बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, 1951

भटनागर, रामरतन

कबीर साहित्य की भूमिका, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, 1950

कबीर, दूसरा संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद, 1958

चतुर्वेदी, परशुराम

कबीर-साहित्य की परख, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1954

बाली, तारकनाथ

युगद्रष्टा कबीर, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1957

भारत भूषण 'सरोज' और शर्मा, श्रीनिवास

महात्मा कबीर, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 1958

द्विवेदी, हज़ारी प्रसाद

कबीर, द्वितीय परिवर्धित संस्करण, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, 1947

द्विवेदी, केदारनाथ

कबीर और कबीर पंथ, तुलनात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 1965

गौड़, राजेन्द्रसिंह

संत कबीर दर्शन, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1955

गुप्त, शिवचरण

कबीर साहित्य समीक्षा, नवयुग पुस्तक भण्डार, लखनऊ, 1965

मैनी, धर्मपाल

कबीर के धार्मिक विश्वास, भारतेंदु भवन, चण्डीगढ़।

शर्मा, सरनाम सिंह

कबीर : एक विवेचन, हिन्दी साहित्य भंडार, दिल्ली, 1960

कबीर-विमर्श, भारत भारती (प्रा० लि०), दिल्ली, 1962

श्रीवास्तव, पुरुषोत्तमलाल

कबीर साहित्य का अध्ययन, साहित्य-रत्नमाला कार्यालय, बनारस, 1951

तिवारी, भोलानाथ

कबीर और उनका काव्य, राजकमल, दिल्ली, 1962

त्रिगुणायत, गोविंद

कबीर की विचारधारा, (पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोधग्रंथ) दूसरा संस्करण, साहित्य निकेतन, कानपुर, 1957

वर्मा, रामकुमार

कबीर का रहस्यवाद, पाँचवाँ संस्करण, साहित्य भवन (लि०) इलाहाबाद, 1944

विजयेन्द्र, स्नातक (सम्पादित)

कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1956.

कबीर की रचनाएँ

अखरावली : वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 1913

अनुराग सागर : गुलशन-ए-पंजाब प्रेस, रावलपिंडी, 1902

अनुराग सागर : विश्वेश्वर प्रेस, बनारस, 1929

आत्मबोध : सुखरामदास मधीरसिंह, हैदराबाद, 1901

भणित प्रकाश : (सं०) परमानंद साधु, कोहेनूर प्रेस, लाहौर, 1983

बीजक वाणी : बहरामजी फ़िरोजशाह मदान, बंबई, 1910

बोधसागर : सं० युगलानंद (भाग 1-6) वेंकेटेश्वर प्रेस, बंबई, 1906

एकोत्तरशतक : वेंकेटेश्वर प्रेस, बंबई, 1920

हंसमुक्ता शब्दावली : रामलाल दयालदास, सूरत 1893

ज्ञानसमाज : गुलज़ारे हिंद प्रेस, गुरगाँव, 1969

काफिर-बोध : भगवानदास रामजी, थेवला, 1892

कबीर दर्पण : सेतवली मोहम्मद पीर मोहम्मद, बंबई, 1898

कबीर ग्रंथावली : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1928

कबीर-सागर : (सं०) युगलानंद, वेंकेटेश्वर प्रेस, बंबई, 1806

रमैनी : लाइट प्रेस, बनारस, 1968

शब्दावली : गणपति दास, लक्ष्मणदास टेपारी (म०प्र०)

शब्दावली : वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद। 1922

शतक टीका : अखेराय, कबीरचौरा, बनारस, 1901

उपदेशरत्नावली : भारत बंधु प्रेस, अलीगढ़, 1862

बीजक भाष्य : सदाफलदेव की टीका, मुक्ति पुस्तकालय, बलिया, 1956

बीजक कबीरदास : विश्वनाथसिंह की टीका, मोहनलाल भार्गव, लखनऊ, 1915

बीजक मूल : भार्गव पुस्तकालय, बनारस

कबीर : वियोगी हरि, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल, 1959

कबीर बीजक (मूल) : पुस्तक मंदिर, मथुरा

कबीर दोहावली : (सं०) महेंद्रकुमार जैन, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, इलाहाबाद, 1952

कबीर ग्रंथावली : (संपादित, भूमिका सहित) श्यामसुंदरदास, पंचम संस्करण, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1951

कबीर ग्रंथावली : पुष्पामाल सिंह, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1962

कबीर साहब का बीजक ग्रंथ : मणिराम साहब, (सं०) मोतीदास-चितादास स्वसंवेद कार्यालय, बड़ौदा, 1955

कबीर साखी संग्रह : वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 1912

कबीर संग्रह : संपा० सीताराम चतुर्वेदी, पाँचवाँ संस्करण, हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 1964

कबीर वचनामृत : (संपा०) मुंशीराम शर्मा, दूसरा सं०, आचार्य शुक्ल साधना सदन, कानपुर, 1955

मूल बीजक : टीका, पूरण साहब और प्रशोधित काशीदास द्वारा, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, 1936

सनवी ग्रंथ : टीका : महाराज राघवदास, दूसरा संस्करण, बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर्स, बनारस, 1950

संस्कृत बीजक ग्रंथ : (अनु०) हनुमानदास, (सं०) मोतीदास चेतनदास, दूसरा संस्करण, स्वसंवेद कार्यालय, बड़ौदा, 1950

संत कबीर : साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1943

संत कबीर की शब्दावली : (संकलन) मणिलाल तुलसीदास मेहता, विट्ठलदास खेमचंददास अहमदाबाद, 1958

कबीर का रहस्यवाद : डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, चौथा संस्करण, इलाहाबाद, 1941

कबीर-साखी-सार : (संपा०) तारकनाथ बाली, टीका रामवसिष्ट, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1936

कबीर के शब्द : पुस्तक मंदिर, मथुरा

कबीर वचनावली : (संपा०) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', दूसरा संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1920

कबीर ग्रंथावली . पारसनाथ तिवारी (1957 में स्वीकृत शोध-प्रबंध) इलाहाबाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1961

इस माला में अब तक प्रकाशित हिन्दी पुस्तिकाएँ

अप्पर	जी. वन्मीकनाथन
आनन्दराम बरुआ	विश्वनारायण शास्त्री
इलंगो अडिगल	मु. वरदराजन
ईश्वरचन्द्र गुप्त	नारायण चौधरी
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	हिरण्मय बनर्जी
ए. आर. राजाराजा वर्मा	के. एम.जॉर्ज
ए. एन. कृष्णराव	जी. एस. अमुर
कबीर	प्रभाकर माचवे
कम्बन	एस. महाराजन
कल्हण	सोमनाथ धर
काका कालेलकर	विष्णु प्रभाकर
काजी नजरुल इस्लाम	गोपाल हाल्दार
कुमारन् आशान	के. एम. जॉर्ज
कुशललाभ	ब्रजमोहन जावलिया
केशवदास	जगदीश गुप्त
केशवसुत	प्रभाकर माचवे
कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर	नारायण कृष्ण शनवारे
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'	नरेशचन्द्र चतुर्वेदी
गालिब	एम. मुजीब
गुरुजाड	वी. आर. नार्ला
गुरु नानक	गुरुबचन सिंह तालिब
गोवर्धनराम	रमणलाल जोशी
घनानन्द	लल्लन राय
चंडीदास	सुकुमार सेन
चन्दू मेनन	टी. सी. शंकर मेनन
चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'	मस्तराम कपूर
जयदेव	सुनीतिकुमार चटर्जी
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जाम्भोजी	हीरालाल माहेश्वरी
जायसी	परमानंद श्रीवास्तव
जिन्दा कौल	ए. एन. रैणा
जीवनानन्द दास	चिदानन्द दासगुप्त
तरुदत्त	पद्मिनी सेनगुप्त
ताराशंकर बंद्योपाध्याय	महाश्वेता देवी
तिरुवल्लुवर	एस. महाराजन
तुकाराम	भालचन्द्र नेमाड़े
दंडी	जयशंकर त्रिपाठी
दक्कवि	अनुराधा पोतदार
दादू दयाल	रामबक्ष
दुरसा आढ़ा	रावत सारस्वत
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
धनीराम चात्रिक	सुरिन्दरसिंह नरूला
नजीर अकबराबादी	मोहम्मद हसन
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशंकर
नम्मालवर	ए. श्रीनिवास राघवन
नरसिंह चिन्तामण केलकर	रामचन्द्र माधव गोले
नर्मदाशंकर	गुलाबदास ब्रोकर
नाटककार श्रीहर्ष	कमलापति मिश्र
नानालाल	उमेद एम. मणियार
नामदेव	एम. जी. देशमुख
निराला	परमानंद श्रीवास्तव
परमानन्द अलमस्त	ओम गोस्वामी
पांजे मंगेश राउ	वी. सीतारमय्या
पोतन्ना	डी. वेंकटवधानी
प्रभय चौधरी	अरुणकुमार मुखोपाध्याय
प्रिथीराज राठौड़	रावत सारस्वत
प्रेमचन्द	प्रकाशचन्द्र गुप्त
फ़कीर मोहन सेनापति	मायाधर मानसिंह

फणीश्वरनाथ रेणु	सुरेन्द्र चौधरी
बंकिमचन्द्र चटर्जी	एस. सी. सेनगुप्त
बलरामदास	चित्तरंजनदास
बसवेश्वर	एच. थिप्पेरुद्रस्वामी
बाणभट्ट	के. कृष्णमूर्ति
बाबा फ़रीद	बलवन्त सिंह आनन्द
बाबूराव विष्णु पराड़कर	ठाकुरप्रसाद सिंह
बारहठ ईसरदास	हीरालाल माहेश्वरी
बिहारी	बच्चन सिंह
बी. एम. श्रीकंठय्या	ए. एन. मूर्तिराव
बुद्धदेव बोस	अलोकरंजन दासगुप्त
भवभूति	जी. के. भट्ट
भाई वीरसिंह	हरवंस सिंह
भारती	प्रेमा नन्दकुमार
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल
भास्कर रामचन्द्र तांबे	जयन्त वष्ट
माइकेल मधुसूदन दत्त	अमलेन्दु बोस
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर	नारायण चौधुरी
महाकवि उल्लूर	सुकुमार अधिकोड
महावीरप्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
माघ कवि	चण्डिका प्रसाद शुक्ल
माणिक बंद्योपाध्याय	सरोज मोहन मित्र
माणिक्कवाचकर	जी. वन्मीकनाथन
माधवदेव	सत्येन्द्रनाथ शर्मा
मुंहता नैणसी	ब्रजमोहन जावलिया
मेघाणी	वी. जे. त्रिवेदी
मोहन राकेश	प्रतिभा अग्रवाल
यशपाल	कमला प्रसाद
रांगेय राघव	मधुरेश
राजा राममोहन राय	सौम्येन्द्रनाथ ठाकुर
रामनरेश त्रिपाठी	सुन्दरराज वैद 'अधीर'
राधानाथ राय	गोपीनाथ मोहान्ति
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल मैनी
लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ	हेम बरुआ
वल्लत्तोल	वी. हृदयकुमारी
विद्यापति	रामनाथ झा
विशाखदत्त	मातृदत्त त्रिवेदी
वृन्दावनलाल वर्मा	राजीव सक्सेना
वीरेशलिंगम	वी. आर नार्ला
वेदम वेंकटराय शास्त्री	वेदम वेंकटराव शास्त्री (कनिष्ठ)
वेमना	वी. आर. नार्ला
शाह लतीफ	के. बी. आडवानी
श्यामसुन्दरदास	सुधाकर पाण्डेय
श्रीअरविन्द	मनोजदास
श्रीधर पाठक	रघुवंश
श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	म. ल. वराडपाण्डे
सचल सरमस्त	के. बी. आडवानी
सरलादास	कृष्णचन्द्र पाणिग्रही
सरोजिनी नायडू	पद्मिनी सेनगुप्त
सुभद्रा कुमारी चौहान	सुधाकर पाण्डेय
सुमित्रानन्दन पन्त	कृष्णदत्त पालीवाल
सूर्यमल्ल मिश्रण	विष्णुदत्त शर्मा
हब्बा खातून	एस. एल. साधु
हरिऔध	मुकुन्द देव शर्मा
हरिनारायण आप्टे	आर. बी. जोशी
क्षेत्रय्या	बी. रजनीकान्त राव
क्षेमेन्द्र	ब्रजमोहन चतुर्वेदी
ज्ञानदेव	पी. वाई. देशपाण्डे

कबीर, जो पन्द्रहवीं शती में विद्यमान थे, संभवतः प्रारम्भिक हिन्दी साहित्य के महानतम गीति कवि और रहस्यवादी थे। उनकी रचना और दर्शन ने आनेवाली शताब्दियों में न केवल हिन्दी साहित्य पर बल्कि उत्तर भारत के जन सामान्य पर अमिट प्रभाव छोड़ा। हिन्दू एवं इस्लाम—दोनों ही धर्मों की अर्थहीन रूढ़ियों और आचारों पर प्रहार कर उन्होंने दोनों को निकट लाने का प्रयत्न यह बताते हुए किया कि दोनों का अन्तिम लक्ष्य एक और एक समान है।

इस पुस्तिका में डॉ० प्रभाकर माचवे ने प्रारंभ में कबीर के जीवन की आधारभूत एवं अद्यतन ज्ञात सामग्रियों का समीक्षात्मक लेखा-जोखा और फिर दार्शनिक रहस्यवाद को उनके अवदान का आकलन प्रस्तुत किया है। इसके उपरान्त उन्होंने कबीर की रचनाओं तथा हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में उनके स्थान का सम्यक् मूल्यांकन भी किया है।

आवरण : सत्यजित रे
सन्निवेश : श्यामल सेन

ISBN 81-260-0018-X

मूल्य : पच्चीस रुपये

Library IIAS, Shimla
H 811.21 K 112 M
00116125